अंक-03, दिसम्बर 2021

गुरु-दर्शन

राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

'मनखे–मनखे एक समान'

बाबा गुरु घासीदास
1756 - 1850

कुलगीत

गुरु कृपा के पुण्य परस से, विद्या का वरदान है।
घासीदास विश्वविद्यालय, हम सब का अभिमान है।
महानदी, शिवनाथ, नर्मदा, हसदो, पावन धारा है।
अंतः सलिला अरपा का, सतत् प्रवाह हमारा है।
छत्तीसगढ़ की माटी का, यह अभिषेक महान है।
भोरमदेव, सरगुजा, शिवरी, रतनपुर, मल्हार यहीं।
कालिदास का आम्रकूट है, अमर काव्य श्रृंगार यहीं।
धरती, गगन, सघन वन गूंजे, जीवन का नवगान है।
शस्य भगीरथ कोरबा जैसी, लोक-शक्ति की लाली है।
जाग उठे हैं गांव हमारे, जागे सभी किसान हैं।
ज्ञान सभ्यता से आलोकित, विद्वत्जन सम्मान जहां।
माधव, लोचन, मुकुटधर पाण्डेय, बख्शी जी अरु भानु यहां।
राव, विप्र, रविशंकर, छेदी, कुंवर वीर का गान है।
मानव मूल्यों का सृजन करें हम, समता, ममता, शांति भरे।
हर्षित, पुलकित हो भारत मां, सुख-समृद्धि सर्वत्र झरे।
विद्या-मंदिर के प्रांगण से, नव-युग का अभिमान है।
गुरु कृपा के पुण्य परस से, विद्या का वरदान है।

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय का यह कुलगीत प्रसिद्ध राजनेता एवं ख्यातिलब्ध साहित्यिक कवि और छत्तीसगढ़ विधानसभा के प्रथम अध्यक्ष स्व. **पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल द्वारा रचा गया है।**

गुरु-दर्शन

(राजभाषा प्रकोष्ठ की वार्षिक पत्रिका)

संरक्षक
प्रो. आलोक चक्रवाल
कुलपति

प्रबंधन
प्रो. शैलेन्द्र कुमार
कुलसचिव

सम्पादक
अखिलेश कुमार तिवारी
हिंदी अधिकारी

सम्पादक मण्डल
प्रो. देवेन्द्र नाथ सिंह
डॉ. घनश्याम दुबे
डॉ. रमेश कुमार गोहे
संतोष कुमार त्रिपाठी
डॉ. सीमा पाण्डेय
डॉ. एस.एस. ठाकुर
डॉ. अनामिका तिवारी

राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
दूरभाष : (07752) 260473
ई–मेल–rajbhashacellggu@gmail.com

आवरण

गुरु-दर्शन

दर्शन का संबंध साक्षात्कार से है। साक्षात्कार के व्यापक संदर्भों में से एक आत्म साक्षात्कार भी है। आत्म साक्षात्कार का संबंध खुद को जानने, समझने और सीखने से है। हमारे सीखने या जानने के जो भी स्रोत हैं, उन्हें हम गुरु रूप में स्वीकार करते हैं। मनुष्य प्रकृति में सीखने या जानने का सबसे उत्सुक प्रतीक है उसने अपना समस्त ज्ञान प्रकृति से ही अनुभूत कर अर्जित किया है। सहजता ज्ञान का प्रमुख उपादेय है समता के बीज इसी में सन्निहित हैं। ज्ञान 'स्व' से परे 'पर' की स्वीकारोक्ति देता है। यह 'पर' का स्वीकार ही हमें संवेदनशील बनाता है, और सत्य के अधिक निकट ले जाता है। यह विश्वविद्यालय अठारहवीं सदी के महान संत एवं सतनाम पंथ के प्रवर्तक गुरु घासीदास जी के नाम पर स्थापित है। इस संत ने अपनी अमृतवाणी में इसी समता और सत का संदेश दिया है। आवरण चित्र के माध्यम से गुरु घासीदास जी के संदेशों के अनुरूप समता और सत्य के प्रकाश को मनुष्य द्वारा स्वीकार करते हुए उसे ज्ञान के माध्यम से अधिक मानवीय, सहज एवं सत्यनिष्ठ होने के प्रतीक रूप में दर्शाया गया है।

(आवरण पृष्ठ की साज–सज्जा विश्वविद्यालय की टीम उड़ान–8 के छात्र–छात्राओं ने की है)

हिन्दी दिवस पर प्रसारित संदेश

मा.श्री धर्मेन्द्र प्रधान
शिक्षा, कौशल विकास और उद्यमशीलता मंत्री
भारत सरकार

मनुष्य के भावों, विचारों, अनुभवों एवं आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही सम्भव है। भाषा की शक्ति के माध्यम से ही मनुष्य ने ज्ञान–विज्ञान सहित सभी क्षेत्रों में प्रगति सुनिश्चित की है। किसी भी सुदृढ़, सक्षम एवं मज़बूत राष्ट्र की पहचान इस बात से होती है कि उसकी अपनी भाषा कितनी व्यापक एवं समर्थ है।

मुझे प्रसन्नता है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान उपनिवेशवादी वर्चस्व के विरूद्ध राष्ट्रीयता की भावना को लेकर विकसित हुई हिन्दी भाषा ने तमाम चुनौतियों एवं संकटों पर पार पाते हुए आज विश्व पटल पर अपना गौरवपूर्ण स्थान निर्मित किया है। अपनी व्यापकता एवं उदारता के कारण हिन्दी हमारे देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था की पूरक है। हिन्दी भाषा में सृजित रचनात्मक एवं ज्ञानात्मक साहित्य किसी भी अन्य वैश्विक भाषा से कमतर नहीं है। हिन्दी भाषा की संरचना एवं प्रकृति इतनी उदार है कि वह दूसरी भाषा के गुण–धर्म एवं संरचना तथा युग–सापेक्ष हुए तकनीकी परिवर्तनों के अनुरूप स्वयं को विकसित करती हुई, उन्हें आत्मसात कर लेती है। हिन्दी के इसी गुण की ओर संकेत करते हुए वरिष्ठ हिन्दी कवि गिरिजा कुमार माथुर ने लिखा है –

"सागर में मिलती धाराएँ, हिन्दी सबकी संगम है,
शब्द, नाद लिपि से भी आगे, एक भरोसा अनुपम है।
गंगा–कावेरी की धारा, साथ मिलाती हिन्दी है,
पूर्व–पश्चिम, कमल–पंखुरी, सेतु बनाती हिन्दी है।।"

हिन्दी की इस सामासिक एवं समावेशी प्रकृति के कारण ही संविधान निर्माताओं ने संविधान के अनुच्छेद 351 के तहत हमें यह दायित्व सौंपा है कि हम हिन्दी के व्यापक प्रचार–प्रसार के लिए पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य करें और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली एवं पदों को आत्मसात करते हुए, संस्कृत और अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि को सुनिश्चित करें।

संविधान द्वारा प्रदत्त इस दायित्व का हमें उत्कृष्टता से निर्वहन करना है। साथ ही, सूचना तकनीक के वर्तमान दौर में हिन्दी को हमें विभिन्न 'ई–टूल्स' के साथ भी जोड़ना है। मैं हिन्दी दिवस के इस पावन अवसर पर शिक्षा मंत्रालय और उससे सम्बद्ध सभी कार्यालयों से आह्वान करता हूँ कि वे हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं की समृद्धि एवं विकास के लिए पूर्व निष्ठा एवं प्रतिबद्धता से कार्य करें।

हिन्दी दिवस के पावन अवसर पर आप सभी को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ !

जय हिन्द!

संदेश

प्रो. आलोक चक्रवाल
कुलपति

यह प्रसन्नता का विषय है कि विश्वविद्यालय का राजभाषा प्रकोष्ठ अपनी वार्षिक पत्रिका **'गुरु–दर्शन'** के तृतीय अंक का प्रकाशन करने जा रहा है। आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा है **''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। ' बिन निज भाषा–ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।''** राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का भी मानना था कि राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है। इसी भावना को ध्यान में रखते हुए स्वतंत्र भारत की संविधान सभा ने सर्वसम्मति से 14 सितम्बर, 1949 को यह निर्णय लिया था कि संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने वाली राजभाषा हिंदी, सांस्कृतिक विविधता में एकता का प्रतीक है। यह विभिन्न भाषा–भाषियों तथा संस्कृतियों के बीच एक सेतु का कार्य करती है। भाषा किसी भी राष्ट्र की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक धरोहर की संवाहिका भी होती है। हमारे देश की शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति में हिंदी का महत्वपूर्ण योगदान है।

विचारों और भावों की अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से सक्षम हिंदी, भारत के जन–जन के मन में बसी भाषा है। राजभाषा हिंदी का प्रयोग एवं प्रचार–प्रसार करना हम सभी का न सिर्फ संवैधानिक दायित्व है, बल्कि यही हमारी नागरिकता का शुल्क भी है। इसी ध्येय को लेकर विश्वविद्यालय के राजभाषा प्रकोष्ठ द्वारा हिंदी की वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन नियमित रूप से किया जा रहा है। मुझे विश्वास है कि इस पत्रिका के तृतीय अंक में प्रकाशित सभी रचनाएं रूचिकर के साथ–साथ स्तरीयता का भी मानक स्थापित करेंगी।

'गुरु–दर्शन' के सम्पादक मण्डल, रचनाकारों तथा प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं।

संदेश

प्रो. शैलेन्द्र कुमार
कुलसचिव

यह सुखद है कि राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए विश्वविद्यालय का राजभाषा प्रकोष्ठ सक्रिय है। प्रकोष्ठ द्वारा समय–समय पर राजभाषा हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया जाता है। साथ ही हिंदी की वार्षिक पत्रिका **गुरु–दर्शन** का नियमित रूप से प्रकाशन किया जा रहा है। हिंदी हमारी राजभाषा है। इस नाते सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रयोग हमारा संवैधानिक तथा नैतिक कर्तव्य है। संघ सरकार की राजभाषा नीति के अनुसार प्रत्येक सरकारी कार्य में हिंदी का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग कर हमे इसके विकास के लिए सक्रिय होना चाहिए। हिंदी की यह विशेषता है कि इसमे दूसरी भाषाओं एवं बोलियों के शब्दों को समाहित करने की क्षमता है। यही इस भाषा की लोकप्रियता का कारण भी है।

भारत की संविधान सभा ने देवनागरी लिपि में हिंदी भाषा को भारतीय संघ सरकार की काम–काज की शासकीय भाषा अर्थात् राजभाषा के रूप में अंगीकार किया था। यह हम सभी की जिम्मेदारी है कि संविधान की भावनाओं के अनुरूप कार्यालयों में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करें।

राजभाषा प्रकोष्ठ की वार्षिक पत्रिका **'गुरु–दर्शन'** विश्वविद्यालय के अधिकारियों–कर्मचारियों को अपनी रचनात्मक प्रतिभा प्रदर्शित करने एवं निखारने के लिए उचित मंच प्रदान कर रही है। इस उद्देश्य की पूर्ति में यह पत्रिका पहले भी सफल रही है। मैं इसके सफल प्रकाशन के लिए शुभकामनाएं प्रदान करता हूँ। पत्रिका का निरंतर प्रकाशन स्वयं में ही इसकी सफलता को परिलक्षित करता है।

सम्पादक की कलम से....

अखिलेश कुमार तिवारी
हिंदी अधिकारी

हिंदी भाषा की आजीवन सेवा व साधना करने वाले पं. माधव राव सप्रे की 150 वीं जयंती पूरे देश में मनाई गई। उन्होंने करीब 121 साल पहले जनवरी, 1900 में पेण्ड्रा से मासिक पत्र **'छत्तीसगढ़ मित्र'** का प्रकाशन–सम्पादन प्रारम्भ किया था। यह छत्तीसगढ़ का पहला समाचार पत्र था। छत्तीसगढ़ न केवल पं. सप्रे, बल्कि गजानन माधव मुक्तिबोध, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, मुकुटधर पाण्डेय, श्रीकांत वर्मा, शंकर शेष और डॉ. बल्देव प्रसाद मिश्र जैसे मूर्धन्य साहित्यकारों की कर्मभूमि रही है। यह मायाराम सुरजन, रामाश्रय उपाध्याय, मधुकर खेर, सत्येन्द्र गुमास्ता, रम्मू श्रीवास्तव, राजनारायण मिश्र, कमल ठाकुर, बबन प्रसाद मिश्र, ललित सुरजन जैसे ओजस्वी पत्रकारों की धरती भी है।

रचनात्मक संभावनाओं की दृष्टि से उर्वर ऐसी पावन धरा में स्थित गुरु घासीदास विश्वविद्यालय से हिंदी की वार्षिक पत्रिका **"गुरु दर्शन"** का प्रकाशन गौरवान्वित करता है। हिंदी साहित्य एवं हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देने वाले इन महानुभावों ने कभी यह नहीं सोचा होगा कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी अंग्रेजी बोलना–समझना ही विद्वता का मापदण्ड होगा।

बांग्लादेश में बांग्ला भाषा को मातृभाषा की मान्यता दिलाने के लिए हुए जनान्दोलनों में चिकित्सा छात्रों का शहीद हो जाना बीते जमाने की बात है। लेकिन इस घटना से यह तो साफ है कि भाषा का स्थान मजहब से भी ऊपर है। भाषा में बहुत ताकत होती है और यह दुर्भाग्य है कि अभी भी हिंदुस्तान में चंद अंग्रेजी पढ़े लिखे और कुलीन लोगों की जुबान है। सत्ता से लेकर सरकार तक सभी जगह अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है। हालांकि एक सुखद परिदृश्य की तरह हिंदी अब बाजार की भाषा बन रही है। व्यापार– व्यवसाय में हिंदी ने अंग्रेजी को विस्थापित करना प्रारम्भ कर दिया है। कहीं–कहीं न्यायालयों में हिंदी में बहस होने लगी है, निर्णय भी आने लगे हैं। हिंदी माध्यम में तकनीकी शिक्षा प्रदान किए जाने की कोशिशें हो रही हैं। विज्ञान व तकनीक की किताबें हिंदी में लिखी जा रही हैं।

भारत सरकार के केन्द्रीय संस्थानों में राजभाषा नीति लागू होने से वातावरण बदल रहा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपने उत्पादों का विज्ञापन हिंदी में देने लगी हैं। हिंदी के महान साहित्यकारों एवं पत्रकारों की कर्मभूमि में शिक्षा की अलख जगा रहे इस विश्वविद्यालय से प्रकाशित **'गुरु–दर्शन'** के तीसरे अंक में जहां पं. सप्रे के व्यक्तित्व व कृतित्व पर विमर्श किया गया है, वहीं राष्ट्रवादी कवि रामधारी सिंह दिनकर पर चर्चा भी है। इस अंक में छत्तीसगढ़ के लोक माध्यमों, छत्तीसगढ़ में विकसित राजस्थानी लोक कला की खुशबू है, तो लोक कलाकारों की अस्मिता की चिंता भी। इस अंक को रूचिकर एवं ज्ञानवर्धक बनाने का प्रयास किया गया है। तथापि आगामी अंक को और बेहतर बनाने के लिए पाठकों के अमूल्य सुझावों का हमेशा स्वागत रहेगा।

अनुक्रम

आलेख

फिलहाल कोई मुक्तिमार्ग नहीं 8 – प्रो. देवेन्द्र
उपेक्षित है तृतीय लिंग समुदाय 13 – डॉ. भारती अहिरवार
स्त्री विमर्श का भारतीय नजरिया 15 – डॉ. गौरी त्रिपाठी
मेरा घर, उनका घर 19 – डॉ. अनुराग चौहान
दिनकर के काव्य में राष्ट्र और समाज 21 – डॉ. रमेश कुमार गोहे
वैज्ञानिक चेतना एवं ध्यान की वैश्विक स्वीकारोक्ति 24 – डॉ. संतोष सिंह ठाकुर
अस्मिता का संकट 27 – डॉ. अमिता
कवि कोकिल विद्यापति 30 – डॉ. सम्पूर्णानन्द झा
छत्तीसगढ़ की कलम कहानी राजस्थान की 35 – डॉ. अखिलेश गुप्ता
राष्ट्रीय शिक्षा नीति और उच्च शिक्षा 40 – डॉ. अनुपमा कुमारी
छत्तीसगढ़ की लोक कलाएं 43 – डॉ. गुरु सरन लाल
माधवराव सप्रे और उनके अनुवाद 46 – डॉ. राजेश मिश्र
व्यंग्य लेखन और हरिशंकर परसाई 49 – डॉ. शोभा बिसेन

कविता

दरख्त 52 – प्रो. हरीश कुमार

और अंत में...

अंतरराष्ट्रीय एकता में हिंदी भाषा की प्रासंगिकता 55 – डॉ. अनामिका तिवारी

डॉ. देवेन्द्र

फिलहाल तो कोई मुक्तिमार्ग नहीं है!

बर्तोल्त ब्रेख्त के नाटक **लाइफ आफ गैलीलियो** में एक दृश्य आता है। गैलीलियो जेल की अंधेरी कोठरी में बन्द होता है और उसका शिष्य आंद्रिया उससे मिलने आता है।अपने गुरु और युग के इस महान वैज्ञानिक को यों अंधेरी कोठरी में बन्द फटेहाल देखकर आंद्रिया कहता है–**कितना दुर्भाग्यशाली है वह देश जिसका कोई नायक नहीं।**

शायद आंद्रिया को भरोसा है कि महाकाव्यों के उदात्त नायक आज अगर सत्ता में होते, तो गैलीलियो के साथ ऐसा न होता।

तब गैलीलियो कहता है–**"दुर्भाग्यशाली है वह देश जो सिर्फ नायकों के बल पर जीता है।"**

तैतीस करोड़ देवी देवताओं वाला हमारा भारत देश वैसे भी वीरपूजा को दासता की तरह अपनाता रहा है। सामाजिक संरचना की बनावट और बुनावट में छुआछूत का भेद निचले पायदान तक जड़ जमाये बैठा है। यह हमारा एक ऐसा यथार्थ है जिस पर भारतीय संस्कृति का वितान फैला हुआ है। हमारी सांस्कृतिक गरिमा के इतिहास में ओझल एक बड़ी संख्या शताब्दियों से खेतों को अपने कठोर श्रम और पसीने से सींचती रही है। लेकिन प्रेमचन्द से पहले साहित्य के पन्नों पर इनकी कहीं कोई उपस्थिति दिख नहीं रही थी।

संस्कृत महाकाव्यों के बाद और आज से लगभग एक हजार साल पहले हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल में ढेर सारे वीर काव्य रचे जा रहे थे। छोटे–छोटे राजाओं के दरबारी कवि लोग खूब सारे धीरोदात्त नायकों की रचना कर रहे थे। तब कैसी विडंबना है कि ठीक उसी समय भारत के राजनीतिक क्षितिज पर गुलामवंश का शासन स्थापित हो रहा था। हमारे एक–एक नायक कायरता और क्रूरता की मिसाल बन कर विदा हो रहे थे। इसलिए

महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि किसी युग को उसका नायक मिल जाय। महत्व इस बात में ज्यादा है कि सामान्य जन को अपने युग का स्वर और साथ मिल जाय।

प्रेमचन्द इसी सामान्य जन के कथाकार हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य में नायकों की जगह चरित्रों को रचा। जिस जाति के साहित्य में दो हजार साल पुरानी धीरोदात्त नायकों की समृद्ध परंपरा थी, उस पूरी की पूरी परंपरा को मात्र दो दशक की अपनी रचनाशीलता के बल पर अपदस्थ करते हुए उन्होंने हिंदी में यथार्थवाद की नींव डाली। उन्होंने साहित्य में यथार्थवाद को न सिर्फ मजबूत जमीन दी, बल्कि उसे आलोचनात्मक यथार्थवाद की मंजिल तक ले गए।

1915 में प्रेमचन्द ने **पंच परमेश्वर** कहानी लिखी थी। यह सिर्फ जुम्मन शेख और अलगू चौधरी की कहानी भर नहीं थी, यह उन संस्थाओं की कहानी थी, जिनपर ग्रामीण समाज की बुनियाद टिकी हुई थी। उसके दो दशक बाद उन्होंने जब **सवा सेर गेहूँ, पूस की रात** और अंतिम कहानी **कफ़न** लिखी तब उनका दृष्टिकोण बदल चुका था। इस विकास यात्रा में अचानक यकीन करना असंभव प्रतीत होता है कि सदियों का इतना बड़ा कार्यभार किसी एक अकेले व्यक्ति ने बहुत कम समय में कैसे सम्भव कर डाला है। भारत के इतिहास में बीसवीं सदी की एक बड़ी उपलब्धि हैं– प्रेमचन्द।

मध्यकालीन बर्बरता से निकलने की कोशिश में नवजागरण कालीन भारतीय मेधा की एक सशक्त और रचनात्मक अभिव्यक्ति हैं– प्रेमचन्द। उसमें भारतीय ग्रामीण जीवन की सबसे प्रामाणिक छवियां मूर्तमान हो उठी हैं।हजारों साल बाद जब लोग हमारे इस युग को जानना चाहेंगे तब प्रेमचन्द की रचनाएँ उन्हें सबसे ज्यादा प्रामाणिक किसी दस्तावेज की तरह याद आया करेंगी।

अपनी रचनात्मकता के लगभग दो दशकों के भीतर उन्होंने तकरीबन ढाई सौ के आस–पास कहानियाँ और दर्जन भर उपन्यास लिखे हैं। उपन्यास तो दुनिया के अलग–अलग देशों में खूब लिखे गए हैं। मैं नहीं कह सकता कि प्रेमचंद के उपन्यास महत्त्व की दृष्टि से उनमें कहाँ और कितनी जगह घेरते हैं? लेकिन वे निश्चित ही विश्वभाषा में हिंदी के अप्रतिम कहानीकार हैं। पिछली सदी के नवजागरण में सामाजिक सुधारों के जितने भी प्रयास हो रहे थे, जितनी भी राजनीतिक हलचलें हो रही थीं, उन सबको समाहित करती भारतीय मेधा और उसकी चिंताएँ,उसके सरोकार मानो कहानियों का विराट फलक बनकर फैलती चली गई।

इन कहानियों की भाषा ने भारतेंदु युग के हिंदी–उर्दू वाले भाषा संबंधी सारे विवादों को हमेशा–हमेशा के लिए खत्म कर दिया। जिस साहित्य में हजारों साल पुरानी धीरोदात्त और कुलीन नायकों की परंपरा चली आ रही थी, वहाँ प्रेमचन्द ने गांव और वहाँ के लोगों के सामाजिक जीवन के रेशे–रेशे को खोल कर रख दिया। नए सौंदर्यबोध की सृष्टि की। इस क्रम में साहित्य के कुलीन घरानों ने उन्हें घृणा का प्रचारक तक कहा। साहित्य से नायकों के युग को हमेशा–हमेशा के लिए चलताऊ करके उन्होंने उनके समानांतर छोटे– छोटे चरित्रों के जीवन की पड़ताल की। उन्होंने **ठाकुर का कुआं** और **सवा सेर गेहूं** जैसी कहानियां लिखी। उनके ये चरित्र हमारे जाने पहचाने रोज सुबह–शाम की दिनचर्या में गुंथे हुए थे। इनकी हर कहानी पूर्ववर्ती युग के नवजागरण के किसी न किसी प्रश्न का भावात्मक तर्क भी है, और वैचारिक उत्तर भी। अंग्रेजी राज और हिन्दू– मुस्लिम विवाद संबंधी मुद्दों पर तो प्रेमचन्द नवजागरण की सोच का भी अतिक्रमण कर जाते हैं। इन कहानियों में वही चरित्र थे जो शताब्दियों से अपने अभाव,अपनी दरिद्रता को भाग्य का अभिशाप मानते हुए चुपचाप राम की, कृष्ण की, शिवाजी और राणा प्रताप की कहानियां श्रद्धा और विस्मय से सुना करते थे। उन्हें क्या पता कि आज इस आधुनिक युग की नवोन्मेष बेला में वे खुद साहित्य के केंद्र बनने जा रहे हैं। ठीक वैसे ही जैसे गांधी जी की राजनीति के केंद्र बन रहे थे।

बीसवीं सदी का तीसरा और चौथा दशक! यह दोनों दशक भारतीय राजनीति के इतिहास में अपने स्वतंत्रता संघर्ष के कारण तो विशेष रूप से उल्लेखनीय है ही, हिंदी

साहित्य में भी उससे पासंग भर भी कम नहीं है । दो विश्वयुद्धों के बीच विकसित हुआ प्रेमचंद के सम्पूर्ण कथा लेखन ने पिछली सदी से शुरू हुए नवजागरण की समूची अंतरात्मा का सार ग्रहण करते हुए उसे एक विराट कथा फलक पर मूर्तमान किया। नवजागरण के भीतर सामाजिक सुधार की जो धारा राजा राममोहन राय या जोतिबा फुले के माध्यम से प्रवाहित हो रही थी, उसमें उन्हें राजनीतिक संरक्षण के लिए अंग्रेजी राज्य का समर्थन लेना और करना पड़ रहा था। बंगाली नवजागरण की एक बड़ी ट्रेजडी तो यह भी थी कि उसमें मुस्लिम विरोध का स्वर भी प्रबल था, लेकिन प्रेमचन्द औपनिवेशिक सत्ता की इस दुरभिसंधि को पहचान रहे थे। उनका समूचा कथा लेखन यथार्थवाद की विभिन्न मंजिलों को समझने की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, बल्कि भारतीय ग्रामीण समाज की संरचना तथा उपनिवेशवाद विरोधी भारतीय जनता द्वारा चलाये जा रहे स्वतंत्रता संघर्ष के स्वरूप को जानने व समझने की उसमें अंतर्दृष्टि भी है। वे नवजागरण की सीमाओं के भी पार तक जाते हैं। भारतेंदु युग को आधुनिकता का प्रवेश द्वार कहा जाता है, लेकिन उस आधुनिकता की सर्वश्रेष्ठ परिणति हैं प्रेमचन्द। उनका साहित्य अपने समय का सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास भी है और समाजशास्त्र भी। इसीलिए उनका महत्व किसी भी समाजशास्त्री और इतिहासकार से बहुत ज्यादा बड़ा है। हो सकता है यह कुछ लोगों को अटपटा लगे लेकिन सच्चाई यही है कि बगैर प्रेमचंद को पढ़े औपनिवेशिक भारत की ग्रामीण संरचना, उसमें वर्गों का स्वरूप और भारत के स्वाधीनता संघर्ष को जानने–समझने की हर कोशिश लगभग आधी–अधूरी और खंडित होगी। उस युग की सामाजिक पृष्ठभूमि के आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तहों को प्रेमचन्द से गुजरे बगैर समझ पाना असम्भव–सा है। क्योंकि वहां ग्रामीण जीवन की दिनचर्या है।

वह आदर्शो का युग था। जीवन और समाज के लगभग हर स्तर पर आदर्श की प्रतिष्ठा थी। कार्यक्षेत्र की भिन्नता के बावजूद गांधी और प्रेमचन्द उस युग के सहोदर जैसे थे। दोनों की चिंताओं के केंद्र भारत के गांव थे। प्रेमचन्द के ही समकालीन लेखक थे श्री सुदर्शन। उनकी कहानी है **हार की जीत**। कहानी के केंद्र में इलाके का कुख्यात डाकू खड़गसिंह है। आप देखिए कि कैसे उस डाकू के जीवन में आदर्श गहरे बैठा हुआ है। प्रेमचन्द के प्रारंभिक लेखन में इन आदर्शों की नैतिक प्रतिष्ठा हर जगह दिखाई देती है। लाख अभाव और पीड़ा के बावजूद लोगों पर इन आदर्शों के मूल्यगत संस्कार प्रभावी और निर्णायक थे। गोदान का किसान **होरी** इसी को **मरजाद** कहता है। मनुष्य के पास अगर यह मरजाद ही नहीं है तो कुछ नहीं। इस मरजाद का स्रोत कृषि आधारित गांवों के संयुक्त परिवार के ही मूल्य, संस्कार और उनकी भीतरी मर्यादा थी। मुख्यतः कृषि संरचना पर आधारित ये गाँव भारत की पहचान थे। जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं उसके उत्स सामंती युग के नायक, उनके वैभव, उनकी विजय पताकाएं नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन के संयुक्त परिवार हैं। जरूरी नहीं कि इसमें सब कुछ ठीकठाक ही हो, स्त्रियों और दलितों के प्रति संयुक्त परिवारों का बर्ताव देख कर भारतीय संस्कृति में आप स्त्रियों और दलितों के 'स्पेस' को भी आसानी से देख सकते हैं। लेकिन प्रेमचंद उसे ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं कर सकते थे। उनके पात्र मानवीय गरिमा के आड़े आ रहे किसी भी तरह की परंपरा और सांस्कृतिक अवरोधों को निर्भय मुखाग्नि दे रहे थे।

साहूकारों के कर्ज में डूबे भारत के गांव शोषण की मार से टूट–उजड़ रहे हैं। लेकिन सिर्फ किसान इन्हीं वजहों से नहीं, उनके भीतर बैठी हुई ग्रामीण जीवन की जड़ता भी उन्हें रोज–रोज तोड़ रही है। गांव बदहाल हो रहे हैं। इस संबंध में मैं प्रेमचन्द की लगभग कम चर्चित कहानी **मुक्तिमार्ग** का जिक्र जरूर करना चाहूंगा।

मुक्तिमार्ग प्रेमचंद की एक ऐसी कहानी है जिसमें बहुत ज्यादा सहज ढंग से गांव का यथार्थ, वह यथार्थ जिसका गवाह हमारी पीढ़ी का बचपन रहा है, दिखाई देता है। कहानी में कुल तीन चरित्र हैं, जिनमें मुख्यतः दो चरित्र ही हैं। एक झींगुर महतो और दूसरा बुद्धू गड़ेरिया। ये दोनों चरित्र ग्रामीण सरंचना में मध्यम जातियों से उठाये गए हैं।

गांव की परंपरागत संरचना में मध्यम जाति से सम्बंधित होने के बावजूद आजादी के बाद महतो, यानी कुर्मी या पटेल मध्यम जाति के समृद्ध बल्कि प्रभावशाली श्रेणी में आते हैं। गोदान का होरी भी महतो ही है। बुद्धू गड़रिया जिस जाति समुदाय से सम्बंधित है, वह आजादी के बाद अपने परंपरागत पेशे से उजड़ गयी है। यह गड़रिया जाति यादवों की तरह कोई प्रभावी सामाजिक भूमिका हासिल नहीं कर सकी है।

मुक्तिमार्ग कहानी अपनी भाषिक संरचना और शिल्प विन्यास की दृष्टि से भी बेहद सधी और गठी हुई कहानी है। सहज और सधे अंदाज में एक चित्रात्मक वितान के साथ शुरू होती है। इस तरह की अलंकारिक भाषा आमतौर पर प्रेमचन्द कम लिखते हैं। किसान की सम्पन्न प्रसन्नता का चित्रण –**सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर, सुंदरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने सामने बैठे हुए रोगियों पर जो घमण्ड होता है, वही किसान को अपने खेतों को लहलहाते हुए देख कर होता है।**

यहीं से झींगुर और बुद्धू की कहानी **मुक्तिमार्ग** शुरू होती है। धन का, जाति का और शक्ति का अहंकार किसान के जीवन में तबाही बन जाता है।

तीन बीघे ऊख की लहलहाती फसलों के नशीले सपनों और घमण्ड में जिस समय झींगुर डूबा हुआ था, तभी उसका सामना बारह कोड़ी भेड़ों के मालिक बुद्धू से हो जाता है। बुद्धू भी अपनी सम्पन्नता के अहंकार में डूबा था।बुद्धू का अहंकार उसकी आपराधिक प्रवृत्ति के कारण और भी उद्दंड है–**सारी दुनिया में चार रुपये के कम्बल बिकते हैं, पर यह पांच रुपये से नीचे बात नहीं करता**।

उसी गांव में हरिहर चमार है। प्रेमचंद लिखते हैं–**यह चमारों का मुखिया बडा दुष्ट आदमी था। सब किसान इससे थरथर कांपते थे।**

कहानी की पृष्ठभूमि में गांव है। भारत का औपनिवेशिक गांव, जो लगातार टूट बिखर कर विपन्न होता जा रहा है। छोटी जोत के किसान दिन ब दिन उजड़ कर मजदूर होते जा रहे हैं। मजदूर दिन भर मजदूरी करके रात को चैन से अपने घर परिवार के साथ रहते हैं। इस मायने में किसान की दशा उन मजदूरों से गयी बीती है, क्योंकि वह अपने खेतों में मजदूरों की तरह श्रम तो करता ही है, ऊपर से निजी पूंजी के मोह में उसे पल–पल उस खेत के साथ लगे रहना पड़ता है। पूरे–पूरे दिन और रात को भी। तब भी वह लगातार बर्बाद होता जा रहा है। इसी मायने में किसान की जीवन समस्याएं मजदूरों से कई गुना ज्यादा होती है। इसी दृष्टिकोण से **पूस की रात** कहानी भी लिखी गई है। **गोदान** उपन्यास में भी किसान का टूट कर मजदूर बनते जाना एक मुख्य त्रासदी है। छोटी जोत का होरी उपन्यास की शुरुआत में एक किसान होता है। जीवन संग्राम में हारता हुआ वह उपन्यास के अंत में एक मजदूर की त्रासदी का शिकार होता है। गोदान में शोषकों– दातादीन, मातादीन, सहुवाइन से लेकर रायसाहब तक के जो नाना रूप फैले हुए हैं, वही सब **पूस की रात** कहानी में नीलगायों की शक्ल में हल्कू का खेत चर जाते हैं। हल्कू किसानी के जंजाल से मुक्त होकर मजदूर होने के मार्ग पर चलना स्वीकार करता है। किसानों का टूट कर अनवरत मजदूर बनना, सामाजिक और ऐतिहासिक मुक्तिमार्ग है। यह मार्ग चाहे जितना त्रासद और कारुणिक हो लेकिन उसकी अंतिम ऐतिहासिक और सामाजिक परिणति यही है।

मुक्तिमार्ग कहानी में प्रेमचंद ने प्रत्यक्षतः किसी औपनिवेशिक शोषणतंत्र को किसानों की बदहाली का कारण नहीं बनाया है। कहने को कहा जा सकता है कि बुद्धू को जिस तरह गोहत्या में फंसाकर घेरा जाता है, उसमें सामंती ब्राह्मणवादी व्यवस्था का दुष्चक्र है। लेकिन यह कत्तई पूरा सच नहीं होगा। झींगुर और बुद्धू जड़, गंवई अहंकार के चलते अपने विनाश और बर्बादी के घोषणापत्र पर स्वेच्छया हस्ताक्षर करते हैं। आज गांवों के पतन के पीछे बेवजह की ढेर सारी मुकदमेबाजी भी एक बड़ा कारण है, जिसकी जड़ें भारतीय ग्रामीण संरचना की चिर परिचित जड़ता है।

इस छोटी कहानी के निहितार्थ ज्यादा दूर तक दिखाई देते हैं। आज गांवों में बढ़ रही आपराधिक प्रवृत्तियों ने गांव

की शक्ल सूरत एकदम से बदल दी है। हमारे बचपन के गांव अब अपराधों के दलदल बनते जा रहे हैं। पंचायती चुनावों के माध्यम से लोकतंत्र को गांवों तक ले जाने की इस पूरी प्रक्रिया ने गांवों को रक्तरंजित कर डाला है। इसका समाजशास्त्रीय अध्ययन करने में प्रेमचंद की ये कहानियां ज्यादा कारगर साबित होती है।

एक और बात है जिसकी ओर मैं इशारा करना चाहता हूँ। डॉ. धर्मवीर ने प्रेमचन्द की कुछ सीमाओं को बताते हुए **सामंत का मुंशी : प्रेमचंद** आलोचना की पुस्तक लिखी है, वैसे तो उसका आधार **कफ़न** कहानी है। प्रेमचंद को लेकर उनकी मुख्य आपत्ति इस बात पर है कि कहानी के दोनों लंपट चरित्र जाति के चमार क्यों हैं,जबकि अमानवीकरण की प्रक्रिया सवर्णो में ज्यादा होती है।ऐसा करने के पीछे प्रेमचन्द पर दलित विरोधी संस्कारों का कुप्रभाव है। **मुक्तिमार्ग** कहानी में हरिहर नामक जो चमार जाति का चरित्र दुष्ट के रूप में गढ़ा गया है, उसे देखते हुए डॉ. धर्मवीर की बात काफी हद तक पुष्ट होती जान पड़ती है। बावजूद इन छोटी मोटी आपत्तियों के सचाई यह है कि बाद के दौर में पैदा होने वाली कथाकारों की एक भरी–पूरी पीढ़ी ने प्रेमचन्द से कहानी का ककहरा सीखा है। उनकी कहानियों में हमारे बचपन का गांव ज्यादा प्रामाणिक दिखाई देता है।

इतिहास में पात्र सच होते हैं, लेकिन उनके बारे में जो कहा और सुनाया जाता है अक्सर बेसिर पैर वाला झूठ का पुलिंदा होता है। इसकी तुलना में कहानियों में पात्र भले अस्तित्व विहीन और झूठे होते हैं, लेकिन उनका जीवन सच होता है। इतिहास की किताबों में गांधी या सुभाष अकेले पात्र होते हैं। कोई दूसरा नहीं होता। लेकिन होरी धनिया हर जगह मौजूद मिलते हैं। उनका जीवन एक व्यक्ति का जीवन भर नहीं होता है उसमें पूरे युग और समाज का जीवित यथार्थ होता है। प्रेमचन्द इसी यथार्थ के कथाकार थे।

❐ **प्रो. देवेन्द्र नाथ सिंह**

हिन्दी विभाग

डॉ. भारती अहिरवार

उपेक्षित है तृतीय लिंग समुदाय

इंसान चाहे वो महिला हो, पुरूष हो या तीसरा लिंग, सभी की सबसे बड़ी उम्मीद रोजगार के समान अवसर पाना और सबसे बड़ी चिंता परिवार–समाज का सम्मान हासिल करना है। बराबरी का अधिकार और सम्मान ही लैगिंक असमानता को मिटा कर जीवन सुधार सकता है जिसे शिक्षा के माध्यम से सरलतापूर्वक हासिल किया जा सकता है।

आश्चर्यजनक यह है कि मनुष्य की सोच में यह समानता का व्यवहार नहीं दिखना। इसके पीछे समाज का पिछड़ापन, अशिक्षा एवं सामाजिक कुरीतियां हैं।इंसान समाज से उम्मीद रखता है कि उसे समान अधिकार, शिक्षा और सम्मान मिले। यह बात पुरूषों पर तो लागू होती है लेकिन समाज का अन्य (महिला एवं तीसरा लिंग) वर्ग इस से वंचित है, और शोषित भी। अतः समाज को सभी लिंग को बराबरी का हक देकर घर एवं समाज में सम्मानपूर्वक जीवन यापन करने का समान अवसर प्रदान करना चाहिए।आत्मनिर्भर होना हर लिंग का सपना होता है, ताकि उसे आर्थिक तंगी से न गुजरना पड़े।

लोगों का नजरिया हर लिंग के लिए समान होना चाहिए। सुरक्षा एक बड़ी चिंता है। समाज के लोग विशेषतः पुरूष का विपरीत लिंग के प्रति, नकारात्मक एवं आपराधिक सोच, भय एवं असुरक्षा का वातावरण बनाती है। समानता की सोच ही घृणा की दीवार को मिटा सकती है, ताकि समाज का उत्थान हो सके। सामाजिक उत्थान एवं सामाजिक सोच में बदलाव व विपरीत लिंग के प्रति सजगता निम्नलिखित तरीकों से की जा सकती है–

1. परिवार का साथ
2. सभी को समान अधिकार
3. सामाजिक नजरिया बदलने के लिए काउंसिलिंग सेल

4. सुरक्षा एवं सम्मान के लिए सख्त कानून
5. सभी के लिए अनिवार्य शिक्षा
6. स्वास्थ्य सजगता
7. सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति
8. पारम्परिक संस्कृति एवं परम्परा को बदलने की जरूरत।

एक दूसरे का सम्मान ही हमें इंसान बनाता है। लैंगिंक असमानता स्वस्थ समाज का निर्माण नहीं कर सकती। शारीरिक बनावट के आधार पर किसी भी प्रकार की हीन भावना, नकारात्मक विचार, हिंसा, अत्याचार इंसानियत नहीं हो सकती। इससे तो बस समाज दूषित ही होता है।

महिलाओं की सफलता की ढेरो कहानियां है। गुजरे सालों ने महिलाओं को कई क्षेत्रों में धीरे–धीरे सफलता के पायदान चढ़ते हुए देखा। पर महामारी के साये ने लैंगिक समानता के लिए बीते कई सालो में जो उपलब्धि हासिल की थी, उसे धुंधला कर दिया है। महिलाओं के लिए बेहद जरूरी है कि वे शैक्षणिक ज्ञान के साथ अन्य प्रकार के ज्ञान भी अर्जित करें, ताकि उनका आत्मविश्वास सदैव बढ़ता रहे। शांति, न्याय, समानता और विकास के अपने संघर्ष में आज देशभर की महिलाएं विभिन्न सांस्कृतिक और जाति समूहों से सभी सीमाओं को पार करती जा रही है और यह परिवर्तन आवश्यक है।

थर्ड जेन्डर का अस्तित्व उतना ही पुराना है, जितना मानव का, नर और नारी का। परन्तु अर्ध–नारीश्वर के इस देश में इनकी न तो कोई पहचान है, न मान–सम्मान, न शिक्षा, न रोजगार। मात्र कुछ सीमित अवसर ही इन्हें प्राप्त हैं। भारत में थर्ड जेन्डर की अनुमानित संख्या 10 लाख है, जो अपने जीवन यापन के लिए संघर्ष कर रहे हैं। तृतीय लिंग की दैनिक स्थिति सुधारने, समाज में उचित स्थान दिलाने एवं शासकीय योजनाओं का लाभ पहुंचाने के लिए माननीय उच्च न्यायालय नई दिल्ली के 15 अप्रैल, 2004 के निर्णय में थर्ड जेन्डर को अन्य नागरिकों की तरह मौलिक अधिकार दिए गए। वर्तमान में इस कानून के तहत अब इनकी जिंदगी में धीरे–धीरे सुधार आना शुरू हुआ है।

लैगिंक समानता का तात्पर्य सामाजिक समरसता से है। सामाजिक समरसता के बगैर एक उन्नत समाज एवं विकसित देश की परिकल्पना अधूरी है।

❐ **सह–प्राध्यापक**
फार्मेसी

डॉ. गौरी त्रिपाठी

स्त्री विमर्श का भारतीय नजरिया

आईना क्यों न दूं कि तमाशा कहूं जिसे
ऐसा कहां से लाऊं कि तुझ–सा कहूं जिसे।

भारतीय स्त्रियों का जीवन ही जैसे एक हिचक के साथ शुरू होता है, जीवन भर एक अंतर्द्वंद चलता रहता है लेकिन दूसरी तरफ इसका महिमामंडन भी कम नहीं है जैसे वह कोई देवी हो। जीवन और समाज का यह अंतर्द्वंद साहित्य में भी बहुत साफ साफ दिखाई पड़ता है। दुनिया की लगभग सभी सभ्यताओं में थोड़े बहुत फेरबदल के साथ वह एक जैसी नजर आती है। हमारा समाज उन्हें अपने–अपने चश्मे से देखता रहता है।

स्त्री का सवाल हमें पूरी दुनिया में मिलेगा। समाज की वे कौन सी संस्थाएं हैं जो स्त्री के जीवन को निर्धारित करती हैं। **सिमोन द बोउवार** के अनुसार साहित्य, संस्कृति, इतिहास व परंपराएं पुरुषों ने बनाए हैं, और पुरुषों ने अपने बनाए इस विधान में स्त्रियों को सर्वत्र दोयम दर्जा दिया है। भारतीय व पश्चिमी स्त्री सिद्धांतों को समझने के लिए बहुत हद तक यह पंक्तियां मददगार होती है लेकिन सिर्फ इन्ही दो चार बातों को पकड़ कर के हम स्त्री स्वर को बहुत बेहतर तरीके से विश्लेषण कर नहीं पाएंगे क्योंकि भारतीय और पश्चिमी परिवेश एकदम अलग अलग है। हमारी संस्कृति में ज्यादातर स्वाभाविकता का दमन कर दिया जाता है। भारतीय समाज स्त्रियों को ठीक वैसे ही नहीं देख पाता है जैसे पश्चिमी सभ्यता के देश देखते हैं । अंदरूनी तौर पर भले ही दोनों ही स्त्रियां एक जगह आकर ठहरती हैं लेकिन व्यावहारिक स्तर पर विचारधाराएं अलग–अलग होती हैं तो जरूरी है कि हम तमाम पश्चिमी विचार को को साथ लेकर के भी भारतीय स्त्रियों की स्थिति को भारतीय व्यावहारिक पक्ष में देखने की कोशिश करें ।

यह तो तय है कि स्त्रियां कितने विरोधी तत्वों के साथ सामंजस्य बैठा कर चलती हैं। ऋग्वेद की ऋचाओं में उसे हम कहीं सबसे महान पाते हैं और थोड़ी देर बाद उसे हम सबसे कमजोर पाते हैं। कहीं वह पूज्य श्रेष्ठ होती है तो कहीं काम की मूर्ति होती है। मध्यकाल का काव्य तो स्त्री विषयक अंतर विरोधी विचारधाराओं से भरा पड़ा हुआ है। वहां मनुष्य की भी बात है तो नारी को कुल नासी और कुल बोरन भी कह दिया जाता है –
चली है कुल बोरनी गंगा नहाए.....
तय कर पाना मुश्किल होता है कि वह वास्तव में है क्या ?

एक तरफ तो वह दैवीय है और दूसरी तरफ पुरुष के मार्ग में बाधा डालने वाली माया। उसे पुरुष के रास्ते में कुछ भी अच्छा ना कर पाने का कारण माना जाता है तो ऐसे में स्त्री विमर्श की बातें कहां से और कैसे की जाए। हम तो स्त्री को मनुष्य तक का दर्जा नहीं देते। उसे हम स्वाभाविक मानते ही कहाँ हैं? जाहिर सी बात है ऐसे समय में हम स्त्री विमर्श को या स्त्री जीवन को समझने के लिए पश्चिमी सिद्धांतों की पड़ताल करते हैं। हालांकि हम कोई भी सिद्धांत हर जगह नहीं प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिए पश्चिमी विचारधारा से अलग सैद्धांतिकी की आवश्यकता है क्योंकि पश्चिम में इतनी विरोधी स्थितियां नहीं दिखाई पड़ती हैं वहां स्त्रियों की दशा पहले से ही काफी साफ है। वह शुरू से ही पुरुषों से कमतर है इसलिए उन्हें शक्ति स्वरूपा नहीं समझा जाता, वे देवी नहीं हैं। बल्कि धार्मिक स्त्रियां जो चर्च से जुड़ी हुई थी उन स्त्रियों ने स्वयं स्त्रियों में ममत्व का भाव खोज कर मातृत्व के भाव को सर्वोच्च स्थापित करने का प्रयास किया। इससे उनका मतलब स्त्री को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करना नहीं था बल्कि माता के रूप में एक सम्मान का भाव प्राप्त करना था। जाहिर सी बात है स्त्री सृजन करती है तो हम कहें या ना कहे वह पुरुषों से विशिष्ट तो होती ही है।

पश्चिम में महिला लेखिकाओं ने ईश्वर को जहां–तहां जब–जब चित्रित किया है उसे अपने प्रिय मित्र अथवा प्रेमी के रूप में प्रस्तुत किया है। यहां तक की जीसस क्राइस्ट के जीवन को भी स्त्री लेखिकाएं स्त्री के पक्ष में प्रस्तुत करती हैं ।

पश्चिम में स्त्री शिक्षा के लिए जिन अग्रणी लेखिकाओं का नाम लिया जाता है उनमे बाथ्सुआ माकिन,कैथरिन मैकाले और मेरी वॉल स्टोनक्राफ्ट का नाम हम सबसे पहले लेंगे ,आश्चर्य की बात यह है कि इतनी बड़ी लड़ाई में कोई भी पुरुष साथ नहीं देता है। थोड़े संघर्ष के बाद दो पुरुष शामिल होते हैं जिनका नाम हम बहुत सम्मान के साथ लेते हैं वह हैं विलियम थॉमस और जॉन स्टूअर्ट मिल।

ये स्त्री अधिकारों की लड़ाई में बढ़ चढ़कर हिस्सा लेते हुए पूरी सहभागिता निभाते हैं। इन दोनों नामों को अगर छोड़ दें तो स्त्री अधिकारों और स्त्री विमर्श की लड़ाइयां काफी बेईमानी लगेंगे। थोड़ी चर्चा इनके अवदानों पर कर ली जाए। विलियम थॉमस एक किताब लिखते हैं 1825 में जो कि स्त्रियों की नारकीय जिंदगी को हम सबके सामने लाता है, इस किताब का नाम है **अपील ऑफ वन हाफ ऑफ द ह्यूमन रेस** तथा जॉन स्टुअर्ट मिल लिखते हैं **'द सब्जेक्शन ऑफ वूमेन'** 1869 में। यह किताब स्त्री की अधीनता को हर सिरे से खारिज करती है। अगर वह गुलाम है तो कभी आगे नहीं बढ़ पाएगी। इस किताब का महत्व आज भी उतना ही है जितना अपने समय में था। स्त्री विमर्श के आधार ग्रंथों में इस किताब का नाम शुमार है। जॉन स्टूअर्ट मिल के बिना स्त्री विमर्श की बातें साफ नहीं हो पाती हैं। वे आने वाली स्त्रियों को एक सिरा पकड़ाते हैं। मताधिकार शिक्षा और रोजगार के प्रश्न पर स्त्रियों को पुरुष के बराबर अधिकार दिलाने की बात करते हैं।

पश्चिम में स्त्रियां अपनी लड़ाई खुद लड़ती हैं क्योंकि उनका विरोधी पक्ष स्पष्ट था। उनके सामने पितृसत्ता की परंपरा थी जिसे वे स्त्री सरोकारों के लिए सबसे बड़ी बाधा मानती थीं।

दूसरी तरफ भारत में स्त्री सरोकारों की लगभग सारी लड़ाइयां नवजागरण काल से शुरू होती हैं जिसे पुरुष समाज सुधारक शुरू करते हैं। राजा राममोहन राय, मृत्युंजय विद्यालंकार, ज्योतिबा फुले, ईश्वरचंद विद्या–

सागर, बेहराम मलबारी, महादेव रानाडे आदि ने स्त्रियों से जुड़े लगभग हर मसले को उठाया और स्त्रियों को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने का प्रयास किया। इस लड़ाई में स्त्रियां भी बराबर की भागीदारी दिखाती हैं, वह भी स्त्री अधिकारों के लिए अपना स्वर मुखर करती हैं।

इन नामों में पंडिता रमाबाई रानाडे, पंडिता रमाबाई सरस्वती, नवाब फेजुनेसा चौधरानी, सावित्री फुले, रुक्या, सरोजनी नायडू, ज्योतिर्मयी देवी, अबला घोष आदि का नाम प्रमुख है। यह सभी स्त्रियां पितृसत्ता के खिलाफ संघर्ष करती हुई स्त्री की स्वतंत्रता, आत्म सम्मान की स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत थीं ।

यह बात तो तय है कि भारतीय समाज और पश्चिमी समाज स्त्री समस्याओं और सरोकारों को लेकर एकदम अलग है। पश्चिमी शुरुआत स्वयं स्त्रियों द्वारा की गई थी और भारत में पुरुष वर्ग शुरू करता है। यह बात अलग है कि भारत के संदर्भ में स्त्री चिंता कहीं मूल में नहीं थी बल्कि राष्ट्रवाद की चिंता थी। स्त्रियां थोड़ी पढ़ लिख लें जिससे अपने बच्चों को पढ़ा सके और राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दे सकें।

ऐसे में पश्चिमी पैमाने से हम भारतीय स्त्री विमर्श के तमाम सरोकारों को समझने में असफल हो सकते हैं। जरूरत है कि भारतीय स्त्रियों के सरोकारों को समझने के लिए भारतीय पैमाना तैयार किया जाए। उधार की सैद्धांतिकी से हम भारत की स्त्रियों की समस्याओं को बेहतर तरीके से नहीं समझ पाएंगे ।हर देश में स्त्री अपने अपने तरीके से संघर्ष करती आई है और उनके लिए अलग सिद्धांत बने होते हैं जिसके आधार पर ही हम वहां के विमर्श को समझते हैं। इस बात को स्त्री विमर्श के जानने वालों ने काफी पहले ही महसूस कर लिया था।

यहां उन तमाम बातों का भी जिक्र जरूरी है जैसे 1960 और 70 के दौर में पश्चिमी स्त्री विचारकों को लगता था– **सिस्टर हुड इस पावरफुल** बहनापा तमाम स्त्रियों को एक साथ जोड़ सकता है। जाहिर सी बात है यह पंक्तियां दुनिया की तमाम स्त्रियों को एक साथ जोड़ती हैं जिसमें भाषा देस जाति मायने नहीं रखती हैं। पूरी दुनिया की स्त्रियां एक हैं। इससे यह संदेश दिया गया उनका दुख भी एक है लेकिन यहीं स्त्री विमर्श में भी दो फांक हो गए। वहां भी अश्वेत महिलाओं ने कहा कि इस स्त्री विमर्श पर श्वेत महिलाओं का ही दबदबा है। बात कहां से कहां पहुंच जाती है ,वर्ग और लिंग से होते हुए यह सीधे–सीधे जाति विभाजन और रंगभेद पर आधारित हो जाती है। स्त्रियों के दुखों के भी तमाम चरण थे। स्त्री का दुख अलग, अश्वेत स्त्री का दुख अलग। स्त्रीवादी विचारकों की समस्याओं में उनके छोटे–छोटे दुख नहीं थे, उनसे कोई लेना–देना ही नहीं था। अश्वेत महिलाओं को जिस तरीके से जानवरों की तरह बर्ताव किया जाता था, उन बातों से इन स्त्रीवादी विचारकों को कोई लेना–देना ही नहीं था वे ज्यादा से ज्यादा व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बातें करती थीं, सामाजिक सरोकार उनकी बातों से धीरे–धीरे खत्म होता गया। ज्यादातर उनकी समस्याएं यूरोप पर ही आधारित थी, उसके बाहर के देशों के लोगों की समस्याएं वहां नदारद थी। वहां नस्ली हिंसा, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं बहस का मुद्दा नहीं था।

यह बात सामने आने लगी कि पश्चिमी स्त्रीवादी स्त्रियों के संघर्ष और अन्य जगहों के स्त्रियों की समस्याओं या उनके संघर्षों में काफी अंतर है। दुनिया की सारी स्त्रियों का दुख एक नहीं है सब के अलग–अलग स्तर हैं, किसी के लिए गुलामी की समस्या प्रमुख है और किसी के लिए व्यक्तिगत आजादी प्रमुख है। जाहिर सी बात है समस्याएं एक नहीं है तो एक ही सिद्धांत दुनिया की सारी स्त्रियों पर नहीं लागू हो सकता है।

1998 में नताशा वाल्टर एक किताब लेकर के आती हैं इसका नाम है **"द न्यू फेमिनिज्म"**। एक नयी स्त्री विमर्श की सैद्धांतिकी। इस किताब की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह एक नई बात हमारे सामने रखती है कि स्त्री की बात करनी है तो केवल स्त्रियों के साथ ही नहीं बल्कि हमें पुरुषों को भी साथ लेकर चलना होगा। तभी हम समाज में समानता स्थापित कर पाएंगे। इसी के जवाब में किताब आती है **द होल वूमेन** जरमेन ग्रीयर की। वे लिखते

हैं जर्मन ग्रियल इस किताब में वे स्त्रियों के संघर्षों पर काम करने वाली महिलाओं की तरफदारी करते हैं स्वीकार करते हैं कि स्त्री को पुरुषों के समान जो अधिकार प्राप्त हुए हैं उसके लिए तमाम स्त्रियों ने लंबी लड़ाई लड़ी है ।

दुनिया की सारी स्त्रियों पर एक ही पैरामीटर नहीं चलेगा। जब स्त्रियों की सामाजिक विविधता इतनी ज्यादा है तो विमर्श भी अलग–अलग तय करना होगा । जैसे जैसे हम बाहरी दुनिया के साथ जुड़ते हैं वैसे वैसे हम कंडीशनिंग और अपने पूर्वाग्रहों और संस्कारों से भी मुक्त होते हैं। स्त्री आजाद भी हो जाती है लेकिन उसका मन नहीं आजाद होता। जबकि दुनिया के लगभग सभी स्त्री विमर्शो में उसे मन से आजाद होना सिखाया जाता है। वह खुद से डरती है। पतिव्रता, अच्छी मां, अच्छी स्त्री बनने का सपना उससे भी अच्छा बनने का दबाव उसने खुद जो ले रखा है। अगर वह इन सब से मुक्त हो जाए तो कोई बात बने। आर्थिक आजादी प्राप्त कर लेना, आधुनिक देखना स्त्री मुक्ति नहीं है। वह खुद पर भरोसा करे दूसरे से सर्टिफिकेट ना मांगे। उसकी कंडीशनिंग ऐसी कर दी गई है कि जब तक वह बता नहीं लेती कि वह अच्छी मां और पत्नी है उसे चैन नहीं आता क्यों स्त्रियां तो खुद को जानती हैं फिर भी उन पर दबाव होता है कि परिवार और समाज उन्हें अच्छा कहे।

कहने का मतलब यह है कि किसी भी सभ्यता और संस्कृति की विकास प्रक्रिया में पुरुषों की ही भूमिका महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उसके आधार पर ही हम स्त्री विमर्श की सैद्धांतिकी बनाते हैं। जैसे पश्चिमी स्त्री विमर्श में हम पुरुषों पर सवाल खड़ा कर सकते हैं, लेकिन भारतीय संदर्भों में थोड़ा मुश्किल हो जाता है। क्योंकि यहां पुरुष मनुष्य के रूप में कम देवता के रूप में ज्यादा जाना जाता है। तो किसी दूसरे देश की सैद्धांतिकी से हम अपने देश के स्त्री सवालों को नहीं सुलझा पाएंगे। इन सारे सवालों को स्त्रियां ही सुलझा सकती हैं और वे सुलझाने किस प्रक्रिया में काफी आगे बढ़ चुकी हैं।

❐ **सह–प्राध्यापक**
हिंदी

डॉ. अनुराग चौहान

मेरा घर
उनका घर

वैसे तो जीव–जंतुओं को डिस्कवरी आदि टीवी चैनल्स और यू–ट्यूब पर देखना आनंददायक होता है पर असल ज़िंदगी में, वह भी शहरी ज़िंदगी में, उनसे सामना होना एक अलग अनुभव होता है। इस शहर के हृदय में कांक्रीट के जंगल और शोर गुल के बीच एक ईमारत में मैं रहता हूँ। शादियों के मौसम में तो पास के होटल से आते कानफोडू संगीत की आवाज़ सुन कर लगने लगता है कि कान नहीं भी होते तो क्या बुरा था। लेकिन इन सबके बीच भी शांति का एक द्वीप है, जिसे घर की खिड़कियों से देख सकता हूँ, महसूस कर सकता हूँ। तीसरी मंज़िल के अपने फ्लैट की खिड़की से नीचे देखूं तो एक कब्रिस्तान दिखता है। उसे कब्रिस्तान क्या कहूं ? इतने सालों में मेरे लिए उसका मौलिक अर्थ और असर शब्द से निकलकर वहां स्थायी रूप से आने वालों के साथ दफ़न हुआ लगता है। बहुत साल पहले ही इस जगह से डर लगना बंद हो गया था। शायद वहां के चिर निद्रा में लीन बाशिंदों को ही हमसे खलल महसूस होता होगा। अक्सर देखता हूँ वहां बकरियों, बच्चों, जुआरियों आदि का जमघट लगा रहता है मानो मृत्यु के परम सत्य के बीच जीवन का उत्सव मन रहा हो। कब्रिस्तान में मजमा मत लगाओ ऐसा बोलने कौन आएगा ? वैसे भी यहाँ लॉकडाउन के समय भी कोई लॉकडाउन नहीं रह सकता। यहाँ तो चला–चली का खेला है। साथ ही लगता है जैसे यहाँ एक समानांतर व्यवस्था है जो चारों ओर बिखरे शहर की आलीशान इमारतों, कारों, फैशन, मॉल आदि को अपनी फक्कड़ मस्ती से ठेंगा दिखा रही हो।

यहीं से नीम का एक पेड़ कब्रिस्तान की चारदीवारी के पार हमारी ईमारत तक पहुँचता है। नीम के पेड़ की कृपा से चूहे, लंगूर, गिलहरियां और यहाँ तक कि सांप भी अपार्टमेंट में पहुँच जाते हैं। चूहों और कनखजूरों से कड़ाई से पेश आना ही पड़ता है। चूहों के कुतरे कपड़ों को फेंकना या रफू कराने का सिलसिला खिड़कियों में

जाली लगवाने के बाद काफी कम हुआ है। एक सांप को छत पर छिपकली को निगलते देखा था। एक अन्य शायद चूहे के पीछे घर के किचन में पहुँच गया था पर शायद ये समझ कर कि भोजन शांति से और एकांत में नहीं हो पायेगा वापस चला गया। कुछ साल पहले बालकनी के नीचे साँपों के एक जोड़े का नृत्य करते करीब 7–8 मिनट का एक वीडियो भी बनाया था, जिसे एक मित्र ने यूट्यूब पर अपलोड कर दिया था। नीम के पेड़ पर पक्षियों की एक अलग छटा रहती है, जैसे मिट्ठु, कबूतर, बाज़, कोयल, भूरे–सुनहरे रंग का महोख या भृगु पक्षी, हमिंगबर्ड आदि। बातूनी मिट्ठु रौनक बढ़ा देते हैं। उनसे ज्यादा बातूनी तो बस शायद स्लेटी रंग की सतबहना या ग्रे बैब्लर पक्षी होती हैं, जो अक्सर विश्वविद्यालय में झुण्ड में देखने को मिल जाती हैं। हमिंगबर्ड तो अधिकतर समय हवा में लटकी हुई मालूम होती है। कबूतर तो रोशनदानों में घोसला भी बना लेते हैं। महोख की 'ऊ ऊ' की आवाज़ की नक़ल करना मैं सीख चुका हूँ और उसको देखकर आवाज निकालने पर पक्षी भी ठिठक कर, भ्रमित हो कर आवाज़ का स्रोत खोजने लगते है। मैं सामने नहीं जाता कि प्रियतमा की जगह एक अधेड़ शिक्षक को देख कर उसे कोई प्रसन्नता नहीं होगी। बाज़ कभी अकेले कभी 3–4 तक के गुट में आते हैं। कभी कभी अपना शिकार भी नीम की डालियों पर बैठ कर खाते हैं। पहले गौरैया भी बहुत दिखती थी पर लगता है शहर ने उन्हें निगल लिया। गिलहरियां दिन भर पेड़ पर उछल कूद और अपनी भाषा में बातें करती हैं। इन्हे मैंने अपने से बड़े पक्षी को भी घुड़कते और खदेड़ते देखा है।

हमारे ड्राइंग रूम की एक खिड़की तो स्थायी रूप से गिलहरियों का घर बन चुकी है। एक पल्ला टूट गया है। यह हमेशा खुला रहता है। दूसरे को बंद कर जंगले से बांध दिया है। यहीं छोटी सी जगह में गिलहरियों के जोड़े हर साल आते हैं, उनके छोटे छोटे बच्चे होते है। वो भोले भाले बच्चे उन्हें देखने पर ज्यादा डरते नहीं हैं बल्कि कौतुहल से देखने लगते है। फिर उनकी माँ आती है और घोसले में ले जाती है मानो बच्चे को कह रही हो 'अजनबियों से दूर रहो'।

एक बार उस पल्ले को बांधने वाली रस्सी खुल गयी और पल्ला भी कुछ खुलने लगा। उस दिन गिलहरी थोड़ी परेशान थी। मैं उसके जाने के बाद उस पल्ले को मजबूती से बांधने लगा। पर उस घोसले में एक बच्चा था ये मुझे पता नहीं था। वो डर कर भाग गया। बाद में गिलहरी बार बार आ जा रही थी और तीखी आवाज में मानो कह रही थी 'मेरा बच्चा कहाँ गया?' उसका मुझे दुःख हुआ। कुछ समय पहले घर की पुताई कराते समय गिलहरी के घोसले को हटाना पड़ा। उसे सहेज कर जूते के एक डब्बे में रख दिया और एक दिन बाद वापस उसकी जगह पर व्यवस्थित कर रख दिया। 3–4 दिन बाद गिलहरी आने लगीं। एक नया जोड़ा, उनके बच्चे.....मधुमक्खियां अपने छत्तों से भटक कर कभी–कभी ट्यूबलाइट की तरफ आ जाती हैं तब डर लगता है। हालाँकि एक–आध काट ले तो दिल को ढाढस दे लेते हैं के शरीर के लिए अच्छा होता है। कुछ आगमन तो बहुत ही अप्रत्याशित होते हैं। एक दिन तो सवेरे घर के प्रवेश द्वार के जाली के दरवाज़े पर एक चमगादड़ लटका हुआ था, किसी बंदनवार की मानिंद। हटाने की कोशिश करने पर उसने जैसा मौखिक विरोध किया, कोई क्रिकेटर अगर मैदान पर करे तो दो तीन मैच का प्रतिबन्ध तय है। इतना कठोर होने के बावजूद जीव जंतुओं का जीवन इतनी जिजीविषा, भिन्नता, और खूबसूरती से भरा होता है कि इसे दो पल देना किसी पूजा से कम नहीं लगता। समय ही नहीं, कुछ सार्थक प्रयत्न करना भी बनता है। और हो भी क्यों ना ? हमने उनकी जमीन, उनकी ज़िंदगी में दखल दिया है, उन्होंने हमारी में नहीं। कुछ दिन बाद ये घर छोड़ना है, दूसरे घर में जाना है– वक्त और ज़रुरत का तकाज़ा। पता नहीं वहां की खिड़कियों से जीवन के क्या रंग दिखेंगे। पर इस घर में जो आएंगे, उनसे निवेदन कर लूँगा कि गिलहरी के घोसले को रहने दें, और सोचता हूँ एक दिन मैं एक पुस्तक लिखूंगा। उस पुस्तक के अंत में नीम का पेड़ और गिलहरियां होंगे। इससे अच्छा अंत और क्या हो सकता है ?

❐ **सहायक प्राध्यापक**
अंग्रेजी

आजादी का अमृत महोत्सव
और राष्ट्रकवि दिनकर की स्मृति में

डॉ. रमेश कुमार गोहे

दिनकर के काव्य में राष्ट्र और समाज

समाज की तत्कालीन परिस्थितियां ही किसी भी लेखक की चेतना, चिंता और लेखकीय संवेदना की उर्वरा भूमि होती है। रामधारी सिंह दिनकर का रचनाकाल 1924 से 1974 तक रहा है। उनके लेखन का शुरूआती दौर गुलामी की पीड़ा भोग रहे राष्ट्र की चिंता करता है और उनकी कविताओं में राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना का स्वर उभरकर सामने आता है।

बचपन से ही उनके अंदर राष्ट्रीय चेतना की भावना का स्वर प्रस्फुटित हो चुका था। इतिहास, वर्तमान और साहित्य अध्ययन ने उनके अंदर सामंतवाद और उपनिवेशवाद के विरूद्ध स्वर उत्पन्न किया। उनको राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना सम्पन्न बनाने में इन वर्तमान परिस्थितियों का ही योगदान है। दिनकर जी की कवि प्रतिभा का प्रथम उन्मेष ही राष्ट्रीय भावनाओं की कविताओं के साथ होता है। दिनकर को अंग्रेजी शासन की नीतियों ने एक उग्रकवि की दिशा की ओर मोड़ दिया और उनकी उग्र राष्ट्रीयता कविताओं में उभरकर सामने आती है। यहां यह बात विशेष ध्यान देने की भी है कि उनकी कविताओं की मनोभूमि निर्मित करने में लोकमान्य तिलक जैसे नेताओं और भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद जैसे बलिदानियों ने महत्वपूर्ण भूमिका बनाई।

दिनकर की कविताओं में राष्ट्र की अतीत गौरव गाथा तो है ही किंतु वर्तमान को भी वे राष्ट्रीयता, धर्म निरपेक्षता और साम्प्रदायिक सद्भावना से जोड़कर देखते हैं। अतः वे इस्लाम के शासन काल को भी भारत के लिए गौरव से जोड़कर ही देखते हैं। **'दिल्ली'** शीर्षक से लिखी कविता में वे शेरशाह से लेकर औंरगजेब तक के शासन को अपना ही मानते हैं।

दिनकर जी ने अपनी कविताओं में इतिहास के आधार को मिथकीय रूप से प्रयोग किया है। यह प्रयोग कविताओं में

ज्यादा प्रभावशील बना। देश को मिली आजादी पर दिनकर जी ने **'अरूणोदय'** कविता के साथ स्वतंत्रता का स्वागत किया। हालांकि स्वतंत्रता के बाद भी दिल्ली पर उन्होंने कई कविताएं लिखीं जिसमें सत्ताभोग की लिप्सा के कारण उनके अंदर मोहभंग की स्थिति दिखाई देती है। उन्होंने वर्तमान शासन के प्रतिपक्ष की भूमिका का निर्वहन करते हुए कई कविताएं लिखीं, जिसमें भ्रष्टाचार जनता का दुःख–दर्द और राजनीतिक दल की भोगलिप्सा की चिंताएं उभरकर सामने आयी। जनता को ही राष्ट्र मानते थे और उनकी कलम जनता के लिए प्रतिबद्ध थी। इसी स्वाभाविकता से उनका राष्ट्रवाद समाज से सीधे जुड़ता दिखाई देता है।

भारत की जनता से बहुत प्रेम करते थे। **'जनता'** और जनता–जगी हुई है, कविताओं में उनका जनता–प्रेम स्पष्ट–नजर आता है। उनका राष्ट्रवाद बहुत मजबूत है किन्तु अगर वह अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में आड़े आता है या वें मानते थे कि **''राष्ट्रीयता, अंतरराष्ट्रीयता से विरोध पालती है, तो अच्छा है कि अब वह विदा हो जाये।''** और उसकी परिणिति उनकी कविता **'राष्ट्र देवता का विसर्जन'** कविता के रूप में सामने आती है।

दिनकर के मन में भी आजादी की कामना भी उतनी ही तीव्र थी, जितनी आजादी के योद्धाओं के मन में थी। उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1948 में **'भारत का आगमन'** कविता में लिखी **'निजसे विरत, सकल मानवता के हित में अनुरत से भारत राजभवन में आओ, सचमुच आज भरत से।'**

दिनकर जी ने राष्ट्र और समाज से संबंधित विपुल लेखन किया है। उनकी कविताओं में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, आजादी के संघर्ष के आशा–निराशा भरे पल, देश की वर्तमान साम्प्रदायिकता, स्वतंत्रता प्राप्ति की आशा, महात्मा गांधी के त्याग, भूदान–आंदोलन, सत्ताधिरियों की भोगलिप्सा, स्वतंत्रता के बाद की स्थिति, जनता की दुर्दशा, पूंजीवादी ताकतों का बोलबाला, भारत सोवियत–मित्रता, चीनी आक्रमण, बंग्लादेश की मुक्ति और अमरीकीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत आदि की चिंताएं मुखर होकर सामने आती हैं। ये विषय ही उन्हें एक राष्ट्रीय कवि के रूप में निर्मित करते हैं। वे सच्चे अर्थों में स्वतंत्रता आंदोलन के प्रवक्ता कवि थे। उनकी कविताओं में देश भक्ति का स्वर प्रचंड रूप से उभरकर सामने आया है। तो आइये पढ़ते है उनकी कविताओं के कुछ अंशों को जिनमें राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना के स्वर मुखर हुए हैं– **'कमल आज उनकी जय बोल** कविता में कविता लिखते हैं–

जला अस्थियां बारी–बारी, चिटकाई जिनमें चिंगारी
जो चढ़ गए पुण्यवेदी पर, लिए बिना गर्दन का मोल
कमल आज उनकी जय बोल,

इस कविता में कवि ने राष्ट्र योद्धाओं के लिए कविता लेखन पर बल दिया है, जिससे कई कवि आगे इस उद्देश्य में साथ जुड़कर राष्ट्रीय चेतना की कविता लिखने लगे।

किसान जीवन और उनकी समस्याओं पर उनकी कविता 'हमारे कृषक' का एक अंग पढ़ते हैं –
"जेठ हो कि हो पूस, हमारे कृषकों को आराम नही है।
छूटे कभी संग बैलों का ऐसा कोई याम नहीं।।"

भारत का यह रेशमी नगर कविता से वे सत्ता और उसकी भोग लिप्सा पर कटाक्ष करते हैं। **"भारत धूलों से भरा, आंसुओं से गीला, भारत अब भी व्याकुल विपत्ति के घेरे में, दिल्ली में तो छूब ज्योति की चहल–पहल, पर भरक रहा सारा देश अंधेरे में।"**

यह कविता आज भी उतनी ही प्रासंगिक लगती है जब हम ग्रामीण भारत में भ्रमण करते हों। उनकी प्रसिद्ध कविता परसुराम की प्रतीक्षा में वें लिखते हैं–

हे वीर बंधु, दायी है कौन विपद का ?
हम दोषी किसको कहें तुम्हारे वध का?

और समर शेष है कविता में लिखते हैं –

ढीली करो धनुष की डोरी, तरकस का कस खोलो
किसने कहा बुद्ध के बेला चली गई, शांति से बोलो ?
समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनके भी अपराध।

राष्ट्र की आशाओं, इच्छाओं को अपनी कलम की ताकत से सामने लाने वाले कविता ने अपने जीवन भर करोड़ो भारतीयों की आवाज बनकर जीवन की समस्याओं, राष्ट्र

की समस्याओं और समाज की समस्याओं को प्रकट किया।

विजय गायन कविता में कवि ने किसान की विजय गाथा लिखी है –

रखी लाज भारत की इस दम हंसुए, खुरपी वालों ने,
शास्त्र बिना ही युद्ध किया है, इन माई के लालों ने।।
वही धन्य, जिसने स्वदेश हित गरदन कटवाई है।
वीर वारदोली वालों की गाओ विजय बधाई है।

अशांति के क्षणों में व्याकुल होकर कवि की कलम 'अशांति' कविता लिखती है –

मां तेरा अशांत अंचल/तेरी इस जगती में बहता
है अशांति धारा अविरल/करता है परिहास शांति का
मां इसका कण कण चंचल।

एक मजदूरिन के प्रति कविता में उनकी संवेदना उभर सामने आती है –

दीनता ने हैं भवें तानी कड़ी,
भूख ने उसको किया लाचार है।
स्वर्ग की रानी भटकती भूमि पर,
आह, विधि, कैसा निठुर व्यापार हो।
है पड़ा सौंदर्य सीमित फूल सा,
धूसरित कच औ वसन के बीच में।
रम्य एक गुलाब कांटों में खिला,
हंस रहा कोई कमल या कीच में।

बीरों के प्रति उनकी कविता 'वीर' में वे लिखते हैं –

ममता प्रिया की, मोह सुत का न भाता उन्हें,
दीन–दलितों से नाता नेह का लगाते हैं।
सेवा की सुगंधभरी जीवन कली की भव्य,
जन्म भूमि वेदिका पे भक्ति भेंट लाते हैं
शत्रु को सुला के खेजते हैं फिर सीस निज,
प्रण को बचाते, पीछे प्राण को बचाते हैं।

– धधक होलि के कविता में कवि अग्नि का प्रचंड बेग और तेज वीरों की तलवारों में भरने की बात करते हैं।

धधक, धधक वीरों की तीखी, तलवारों की धारों में।
धधक, धरित्री की छाती पर, धौंसों की धुधकारों में।
उथल–पुथल करने वाली, घनघोर प्रलय हुंकारों में।
धधक–क्रुद्ध, कर्कश भुजंग से वीरों की फुंफकारों में।

तालवार की धार कविता में कवि के भाव देखते ही बनते हैं–

पराधीनता की आकुलता की है यह कैसी पीड़ा,
जरा बता दो कैसी है, यह आत्म प्रलय की क्रीडा,
अनाचार की न्याय नीति का, यह कैसा बलिदान?
कैसी यह धीरता धरा की, नभ का मौन महान?

भगत सिंह की फांसी के बाद और लगभग नमक सत्याग्रह के समय उनकी कविता **'शहीदों के नाम पर'** सामने आती हैं।

जिसमें वे लिखते हैं –

जय हो झिलमिल बुझी आरती, कहां पहुंच सत्कार करें ?
किस ललाट में करें तिलक ? किस ग्रीवा में जयहार धरें ?

हिमालय के प्रति कविता जो कि उनकी प्रसिद्ध कविताओं में से एक है में उन्होंने हिमालय की महिमा, यश कीर्ति का गायन किया है –

मेरे नगपति ! मेरे विशाल, साकार, दिव्य गौरव विराट
पौरूष के पूंजीभूत ज्बाल, मेरी जननी के हिमकिरीट
मेरे भारत के दिव्य भाल, मेरे नगपति, मेरे विशाल।

उनकी 'प्रभाती' कविता में जो संदेश है –

हे प्रवासी, जाग, तेरे/देश का संवाद आया,

आजादी के प्रणेता गांधी जी पर उन्होंने गांधी शीर्षक से कविता लिखा –

सत्य ध्वज मनुष्य कहां तक ऊपर उठ सकता है?
बापू तुम पृथ्वी पर हिमालय हो, आकाश में सूर्य हो।

भारतीय सेना का प्रयाण गीत में –

जाग रहे हम वीर जवान/ जियो, जियो अय हिन्दुस्तान,
हम प्रभात की नई किरण हैं/ हम दिन वे आलोक नवल
हम नवीन भारत के सैनिक/धीर, वीर, गम्भीर, अचल,।

दिनकर जी ने राष्ट्र प्रेम, भक्ति और चेतना की कई प्रसिद्ध कविताएं लिखीं जिन्हें बहुत ख्याति मिली।

उन्हें नारो, में, जुलूसों में, और रैलियों में गाया गया –

राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना के लेखन के लिए आजादी के अमृत महोत्सव पर हम आपका स्मरण करते हुए आपको सच्ची श्रद्धांजलि व्यक्त करते हैं।

❐ **सहायक प्राध्यापक**
हिंदी

डॉ. संतोष सिंह ठाकुर

वैज्ञानिक चेतना एवं ध्यान की वैश्विक स्वीकारोक्ति

मानव जाति (Homo Sapiens) का सबसे रहस्यपूर्ण और जटिल अगर कोई तंत्र है तो वह उसका स्नायु तंत्र है जिसमें मस्तिष्क (brain) और रहस्यमय मानव मन (human mind) है, ऐसा कहना अतिश्योक्तिपूर्ण कथन नहीं होगा। मानव ने अपने मस्तिष्क के तर्क बल और सृजन शक्ति के आधार पर अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों, कलाओं, भाषा, साहित्य, समाज, संस्कृति, धर्म, दर्शन, आध्यात्मिक अन्यान्य सिद्धांत और अवधारणाओं को जन्म दिया। इस सबका आधार मानव मन, बुद्धि और चेतना है। चेतना का अर्थ उस मस्तिष्क–शक्ति, इन्द्रीय व अतीन्द्रिय बोध से है, जिसके कारण मनुष्य जागृत (aware) रहता है एवं बाह्य भौतिक जगत तथा आतंरिक जगत के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रियाशील और सृजनात्मक दृष्टिकोण रख किसी ठोस निष्कर्ष या सिद्धांत तक पहुँचता है। प्राकृतिक घटनाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण, तार्किक चिंतन और व्याख्या में इन्द्रीयजन्य बोध के माध्यम से मस्तिष्क द्वारा एक निष्कर्ष तक पहुंचते है जिसका प्रतिपादन ज्ञान या सिद्धांत के रूप में होता है। मस्तिष्क में यह कार्य प्रथम कोटि की चेतना में सम्पन्न हो जाता है। स्नायु वैज्ञानिकों ने दावा किया कि जटिल प्रश्नों के समाधान या कार्य सम्पादन मस्तिष्क के प्री फ्रंटल कॉर्टेक्स में होता है, जिस के लिए उच्च श्रेणी की चेतना आवश्यक है। आधुनिक शिक्षा और शोध में चेतना भी संज्ञानात्मक विज्ञान (Cognitive science) में अंतः विषयक अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है, जिसमें मनोविज्ञान, भाषा विज्ञान, मानव विज्ञान, तंत्रिका– मनोविज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान और तंत्रिका विज्ञान जैसे क्षेत्र शामिल हैं। मानव के अलावा अन्य जीवधारियों के मस्तिष्क में चेतना के उच्च स्तर का विकास नहीं होने के कारण उनमें

कल्पनाशीलता, सृजनात्मकता, दूरदर्शिता आदि का अभाव होता है तथा अतीन्द्रिय बोध व ध्यान कर पाने में सक्षम नहीं हो पाते।

वास्तव में मानव–जीवनचेतना का सातत्य अग्रगामी विकास ही है। जीवन की बहिर्यात्रा के साथ साथ अंतर्यात्रा का सम्यक बोध भी चेतना का एक महत्वपूर्ण आयाम है। आंतरिक ऊर्जा या शक्ति का अधोगमन के संग ऊर्ध्वगमन की प्रकिया का कारण भी चेतना ही है। चेतना शब्द का उपयोग अन्तर्प्रज्ञा, आत्मबोध, स्वानुभूति, आत्मा, तत्वज्ञान, अन्तर्ध्यान, अतीन्द्रिय बोध आदि के लिए भी देखने को मिलता है। उदाहरणस्वरूप कार चलाता हुआ मनुष्य संतुलन, गति, कार्य और चेतना जागृत रख अग्रगामी होता रहता है। कार चलाना विशुद्ध बाह्य कार्य होते हुए भी उसे चलाने की दक्षता, पूर्व अनुभव, मानसिक संतुलन और चेतना जागृत होनी चाहिए। चालक को अंदर से एक ऐसे तत्व की अनुभूति होती है जो दृष्टा की भांति इस क्रिया को करते देख रहा होता है। वह कार को चेतनापूर्ण अवस्था में दुर्घटनाग्रस्त नहीं कर सकता या किसी अन्य को हानि नहीं पहुंचा सकता।

चेतना के विकास में ध्यान बहुत सहायक सिद्ध हुआ है. पिछले दो दशकों में ध्यान और प्राणायाम (Mindfulness Breathing) पर वैश्विक स्तर पर अनुसंधान में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। अभी हाल ही में जर्मनी के ओस्नाब्रूक विश्वविद्यालय के प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के डॉ बेंजामिन सोने व् उनके रिसर्च ग्रुप ने वैज्ञानिक विधि द्वारा प्रयोगकर (एलेक्ट्रो एन्सेफलो ग्राम यन्त्र द्वारा) यह सिद्ध किया कि प्राणायाम और ध्यान के द्वारा मनुष्य के संज्ञानात्मक गुणधर्म, कार्यक्षमता में वृद्धि और व्यवहार में सकारात्मकता आती है। उनका यह निष्कर्ष नेचर समूह के प्रतिष्ठित जर्नल में साइंटिफिक रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ है। इसके पूर्व में भी महर्षि महेश योगी के भावातीत ध्यान पर अमेरिकी विश्वविद्यालय जैसे हार्वर्ड मेडिकल स्कूल, स्टैनफोर्ड मेडिकल स्कूल, येल मेडिकल स्कूल और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, लॉस एंजिल्स मेडिकल स्कूल में और अन्य अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय में हुए शोध के आधार पर 380 से अधिक शोध कार्यों के 160 से अधिक वैज्ञानिक शोध पत्रों को प्रतिष्ठित जर्नल्स में प्रकाशित कर चुके है। इससे न केवल आंतरिक शांति, निर्णय क्षमता, और आनंद में वृद्धि होती है वरन जीवन में चिंता, अवसाद और तनाव कम होता है। भारत वर्ष में पातंजलि का योगसूत्र 3000 वर्ष पूर्व से है, जिसमें ध्यान के पहले यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा की बात अभ्यास में लाने को कही गयी है अंतिम में सविकल्प और निर्विकल्प समाधि लक्षित किया गया है।

अभी हाल ही में चिंतनशील तंत्रिका विज्ञान (Contemplative neuroscience) का विकास हुआ है जिस में ध्यान के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए एफएमआरआई (फंक्शनल मैग्नेटिक रेजोनेंस इमेजिंग) जैसे तंत्रिका विज्ञान उपकरण का उपयोग किया जाता है। इस क्षेत्र के संस्थापक वैज्ञानिको में रिचर्ड डेविडसन, फ्रांसिस्को वरेला और बी. एलन वालेस शामिल हैं।

व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता पूर्ण होने के पश्चात वह जिज्ञासु और चिन्तनशील प्राणी होने के कारण जीवन के गूढ़ अर्थ और रहस्य को जानना चाहता है। वह स्वयं को विकसित (Evolve) कर अपनी पूर्ण क्षमता और ऊर्जा (Potential) में अभिव्यक्त करना चाहता है। परम सत्य, तत्व, ज्ञान, ईश्वर, निरपेक्ष, सौंदर्य, दुःख निदान, मोक्ष आदि के बारे में अपने जीवन के किसी न किसी कालखंड में जरूर सोचता है। शरीर, मन व इन्द्रियाँ की अनंत परिवर्तनशील तृष्णाएं उसे आसक्ति, अहंकार, दुःख , क्षोभ, बंधन और तनाव पैदा करते जान पड़ते है। मनुष्य स्वयं को अपूर्ण और दुखी मानते हुए एक ऐसे आदर्श वैयक्तिक या निर्वैयक्तिक निरपेक्ष सत्ता या स्वतंत्र चेतना की कल्पना करता है जो पूर्ण (Perfect), अविनाशी, अपरिवर्तनीय , आनंदित, समयातीत, एकाकार (Oneness) और एकदम स्पष्ट (Crystal clear) हो। जब इस जटिल प्रश्न का समाधान बुद्धि , विज्ञान या इन्द्रीय बोध से प्राप्त नहीं होता तब वह तर्क, स्व–ज्ञान और अनुभव (Intuitive reasoning, insightful knowledge and experience) के द्वारा जानना चाहता है। कई बार यह अनुभूति या बोध विभिन्न व्यक्तियों

में समान, अलग या रहस्यमय हो सकती है। इन अनुभवों में प्रायः दिव्य ज्ञान, अशरीरी अनुभव, समयातीत , विचार शून्यता, पुनर्जन्म के अनुभव, आध्यात्मिक ऊर्जा का अनुभव आदि है. जिसे शब्दों या भाषा के द्वारा वर्णन करना संभव या न्यायोचित नहीं है. इस अनुभूति को संत कबीर **'गूंगा केरी शर्करा खाय और मुस्काय'** कहते है। कर्ट गोल्डस्टीन इसे आत्म–साक्षात्कार (Self-actualization) कहते है., प्रसिद्ध अस्तित्त्ववादी दार्शनिक ज्यापाल सार्त्र के अनुसार **''व्यक्ति चाहे या न चाहे एक बार वह इस विश्व में जन्म ले लिया तो उसे स्वतन्त्र (Free) होने के लिए प्रयत्न करना ही पड़ता है। भारतीय दर्शन में भी इसे मोक्ष, निर्वाण और कैवल्य कहा है।**

भारतीय मनीषियों और आध्यात्मिक गुरुओं ने सम्पूर्ण ब्रम्हांड को चेतनापूर्ण माना है चाहे वो जड़ (निर्जीव पदार्थ) हो या सजीव। हर कंकण में शंकर और समस्त चराचर संसार को उसी चैतन्य की अभियक्ति को स्वीकारा है। श्रीमद भगवत गीता में चेतना या आत्मा को अ–शरीरी कहा जो जन्म–मृत्यु से परे शाश्वत है। इसे शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता और वायु सुखा नहीं सकता। इसे उष्मागतिकी के प्रथम नियम के अनुरूप भाषित होते है, जिसमें कहा गया है कि **''ऊर्जा न तो नष्ट किया जा सकता और न ही उत्पन्न''**

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।
अध्याय 2, श्लोक नंबर 23
चेतना को ही जानने वाला और जानने योग्य बताकर विश्वव्यापी कहा है –
वेत्तासिवेद्यं च परं च धामत्वयाततं विश्वमनन्तरूप –
अध्याय 11, श्लोक नंबर 38

कुछ लोग चेतना के अस्तित्व को चुनौती देते हुए इसे कोरा बकवास, अमूर्त और भ्रामक मानते है। भारतीय संदर्भ में भी चार्वाक दर्शन ने इसे कुछ बुद्धिजीवियों की चाल बताकर सुखवाद और पदार्थवाद को यथार्थ मानते हुए **यावत् जीवित सुखम जीवेत** की बात को बल दिया। निष्कर्ष यह कि आधुनिक विज्ञान भी चेतना और ध्यान को धीरे धीरे ही सही, अब मानने लगा है और इस धारणा और प्रयोग को व्यापक वैश्विक स्तर पर स्वीकारोक्ति मिल रही है, जबकि यह ज्ञान और विज्ञान किसी न किसी रूप में भारतीय दर्शन और अध्यात्म में प्राचीन काल से विद्यमान है।

❒ **सहायक प्राध्यापक**
रसायन शास्त्र

लोक कलाकार

डॉ. अमिता

अस्मिता का संकट

आधुनिक युग के आगमन ने परम्परागत रीति–रिवाज, कला–संस्कृति पर जिस तरह से हमला किया है, वह निराशाजनक है। लोक कलाकार पीढ़ी–दर–पीढ़ी परम्पराओं, संस्कृतियों और गाथाओं के संरक्षक और संवाहक रहे हैं। लेकिन आज यह वर्ग खुद ही अपने संरक्षण का मोहताज हो गया है। वर्ष 2017 में संभवतः पत्रिका अखबार (रायपुर, छ.ग.) के ऑनलाइन संस्करण में राकेश चतुर्वेदी की एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, जिसमें उन्होंने बताया था कि कुछ समय पूर्व छत्तीसगढ़ के प्रख्यात लोक कलाकार स्व. गंगाराम शिवारे की पत्नी सोनी बाई की तंगहाली में मौत हो गयी। इस संदर्भ में संस्कृति विभाग द्वारा कलाकारों की उपेक्षा की खबरों के बीच लोक कलाकार रमादत्त जोशी ने संस्कृति विभाग के कारिंदों पर बेहद गंभीर आरोप लगाए थे। जोशी ने कहा था कि संस्कृति विभाग के अधिकारी इवेंट कंपनियों के जरिए कार्यक्रम आयोजित करा रहे हैं और उन्हें ही उपकृत कर रहे हैं। कलाकारों की तंगहाली से संस्कृति विभाग का कोई वास्ता नहीं है।

ऐसा ही एक आलेख उदयन शर्मा पत्रकारिता सम्मान से पुरस्कृत राजेश अग्रवाल ने 15 अगस्त 2010 को **'छत्तीसगढ़ के लोक–संगीत की वर्तमान स्थिति'** शीर्षक से बरगद नामक ब्लॉग पर लिखा था। इस आलेख में उन्होंने बताया था कि छत्तीसगढ़ राज्य बनने के बाद इस उम्मीद को गहरा धक्का लगा कि राज्य के लोक संस्कृति को नई ऊंचाई मिलेगी। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। एक दो गीतों व फिल्मांकनों को छोड़ दिया जाए तो छत्तीसगढ़ के हर पंडाल पर, हर उत्सव और त्योहार में राज्य की लोककला को लहूलुहान होते देखा जा सकता है। छत्तीसगढ़ी गीतों को भी बॉलीवुड में इस्तेमाल किया गया, लेकिन इससे यहां के कलाकारों को ना तो कोई वैसा फायदा मिला और ना मेहनताना।

यह स्थिति कमोबेश सभी क्षेत्रों के लोक कलाकारों के साथ बनी हुई है। भूमंडलीकरण के युग के बाद खास तौर पर लोक कलाकारों को और भी ज्यादा उपेक्षित कर दिया गया है। तकनीकी विस्तार ने लोक संस्कृति पर जो हमला बोला है, उससे लोक संस्कृति को संरक्षण शायद ही कोई प्रदान कर सकता है, जिसकी मैं खुद भी साक्षी हूँ।

10 मार्च 2018 की बात है, जब खबर आयी कि सुप्रसिद्ध भरथरी गायिका (लोक गायिका) सुरुज बाई खांडे का बिलासपुर के एक निजी अस्पताल में 69 साल की उम्र में निधन हो गया। उसके कुछ ही दिन बात जाने–माने नाट्य निर्देशक स्वर्गीय हबीब तनवीर के घर की नीलामी की खबर आयी। श्री तनवीर ने लोककला एवं आंचलिकता को बढ़ावा देते हुए छत्तीसगढ़ के लोक कलाकारों को राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति दिलवाई। इन दोनों खबरों ने मुझे अंदर से झकझोर कर रख दिया था। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि देश–दुनिया में छत्तीसगढ़ को लोक गायन और रंगमंच में अमिट पहचान दिलाने वाले लोगों के साथ ऐसी भी स्थिति हो सकती है।

सुरुज बाई खांडे ने अपनी गायकी से राज्य, और देश सहित विदेशों में भी नाम कमाया और छत्तीसगढ़ को भी एक विशेष पहचान दिलाई। हारमोनियम, बांसुरी, तबला, मंजीरा की संगत से गाया जाने वाला लोकगीत भरथरी, राजा भरथरी के जीवन वृत्त, नीति और उपदेशों को लोक शैली में प्रस्तुत करने की लोककला के रूप में प्रचलित रहा है। छत्तीसगढ़ का यह लोकगीत यहां के लोगों के बीच काफी लोकप्रिय है। भरथरी छत्तीसगढ़ की एक लोक गाथा है। यहां सांरण या एकतारा के साथ भरथरी गाते योगियों को देखा जाता रहा है। भरथरी की सतक एवं उनकी कथा ने लोक में पहुंच कर एक खास लोकप्रियता हासिल की। लोक जीवन के विकट यथार्थ एवं सहज मान्यता ने जिस भरथरी को जन्म दिया, वह अनेक अर्थो में लोक शक्ति के अधीन प्रयोगशीलता और विलक्षण क्षमता का परिमाण है। इसी गायन की जीवंत प्रतीक श्रीमती सुरुज बाई खाण्डे आजीवन भरथरी गायन की मिसाल बनी रहीं।

आंचलिक परम्परा में आध्यात्मिक लोकनायक के रूप में प्रतिष्ठित राजा भर्तृहरि के जीवन वृत्त, नीति और उपदेशों को लोक शैली में प्रस्तुती दी गयी, वही है–भरथरी। छत्तीसगढ़ में भरथरी गायन की पुरानी परंपरा को सुरुजबाई खांडे ने रोचक लोक शैली में प्रस्तुत कर अपनी विशेष पहचान बनायी है।

स्वर्गीय सुरुज बाई खांडे से मेरी मुलाकात अचानक ही हुई। अप्रैल 2017 को मैं और सामाजिक विज्ञान की तत्कालीन अधिष्ठाता प्रो. अनुपमा सक्सेना झुग्गी बस्तियों पर एक रिपोर्ट बनाने के सिलसिले में बिलासपुर की कई झुग्गी बस्तियों की पड़ताल कर रहे थे। इसी पड़ताल के दौरान हम एक दिन दिवंगत सुरूज बाई खांडे के घर पहुंच गये। जब हमने उस घर में सुरूज बाई खांडे को देखा तो ऐसा लगा, जैसे हमारे पांव तले से जमीन खिसक गयी। इतनी बड़ी भरथरी लोक गायिका हमें इस हाल में मिलेंगी, इसका अंदाजा भी नहीं था।

जब हमने उनसे पूछा कि आप झुग्गी बस्ती में क्यों रहती हैं? तब उन्होंने कहा कि हमारे पास कोई विकल्प नहीं है। यह घर भी बहुत मुश्किल से खड़ा कर पायी हूँ। उन्होंने बताया था कि लोक कलाकार के तौर पर एसईसीएल में चतुर्थ कर्मचारी वर्ग में नौकरी दी गई थी। लेकिन दुर्घटना होने की वजह से नौकरी करना असंभव हो गया, लिहाजा उन्हें नौ साल पहले ही रिटायरमेंट दे दिया गया। रिटायरमेंट के बाद मात्र दो हजार रूपये के पेंशन में हम किसी तरीके से अपना गुजर–बसर करते हैं। सरकार से हमने कई बार गुहार लगायी पर कोई असर नहीं हुआ। मध्यप्रदेश सरकार ने अहिल्या बाई सम्मान से सम्मानित किया गया था और उसी पैसे से हमने यह मकान किसी तरीके से खड़ा किया है। लेकिन छत्तीसगढ़ की सरकार ने अब तक कोई सुध नहीं ली। छत्तीसगढ़ में भरथरी गायन की परंपरा को सुरुजबाई खांडे ने आकर्षक लोक शैली में प्रस्तुत कर अपनी पहचान के साथ–साथ पूरे छत्तीसगढ़ को एक अमिट पहचान से नवाजा। सुरुजबाई खांडे रुस, दुसाम्बे, अमला के अलावा लगभग 18 देशों में अपनी कला का डंका बजाया और लोक गायिकी को दुनिया भर में

स्थान दिलाया। सुरुज बाई खांडे ने अपना जीवन लोककला को समर्पित किया था। उन्होंने सात साल की उम्र से भरथरी गाने की शुरुआत की थी। अपने नाना स्वर्गीय राम साय घृतलहरे के मार्गदर्शन में उन्होंने काफी कुछ सीखा और इस गायकी को एक उन्नत स्थान दिलाया।

1986–87 में सोवियत रूस में हुए भारत महोत्सव का हिस्सा बनी थीं। भारत महोत्सव में भी उन्होंने हिस्सा लिया था। उन्होंने भरथरी जैसी प्राचीन परंपरागत शैली में गाए जाने वाले गीतों को न सिर्फ जिंदा रखा, बल्कि उसे नया आयाम भी दिया। उसे पूरी दुनिया के मंचों पर पहचान दिलायी।

दूसरी बार उन्हें देखने और सुनने का मौका 18 दिसंबर को गुरू घासीदास जयंती कार्यक्रम के दौरान विश्वविद्यालय में मिला था। उम्र के इस पड़ाव में इतने बड़े सभागार में बिना किसी गाजे–बाजे के पूरे सभागार को अपनी आवाज की बुलंदी से झूमने पर मजबूर कर दिया था। तब किसी ने नहीं सोचा होगा कि यह दमदार आवाज इतनी जल्दी खामोश हो जायेगी।

लेकिन खुद की पहचान को बचाये रखने के संघर्ष ने उन्हें झकझोर दिया था। उनकी और उनके पति की इच्छा और आशा थी कि उन्हें सरकार एक–न–एक दिन पद्मश्री या किसी अन्य ऐसे ही पुरस्कार से अवश्य नवाजेगी, लेकिन उनकी यह इच्छा उनके साथ ही दफ़न हो गयी और जीवन के अंतिम पड़ाव में केंद्र तथा राज्य सरकार द्वारा उन्हें कोई सहयोग तक नहीं मिला। कोई सहयोग मिलना और भी मुश्किल है जब भारतीय समाज में कोई कलाकार दलित अथवा पिछड़े वर्ग से होता है, जिसे सुरूज बाई खांडे और उनके पति ने साफ–साफ बयां किया था।

भारतीय समाज में पुरस्कारों का राजनीतिकरण और जातिवादी मानसिकता को देखते हुये यदि हम यह कहें कि एक महान प्रतिभा को बिना पुरस्कृत किये बिना ही अलविदा कह दिया, और हम एक गौरवपूर्ण कार्य करने से वंचित रह गये, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। हां, मृत्यु की गोद में समाई इस विभूति के जाने के बाद नेता अपना शोक व्यक्त करने जरूर प्रकट हो गये। जिन्होंने जिंदा रहते इस महान कलाकार की उपेक्षा की, जिसके कारण आजीवन वह बदहाल जीवन जीने को मजबूर रही, सभी मरने के बाद सिर्फ दुख व्यक्त करते रहे।

प्राप्त खबरों के अनुसार सुरुज बाई के हर कार्यक्रम में उनके साथ रहने वाले उनके पति लखन खांडे ने सुबकते–सुबकते कहा था कि इतनी बड़ी गायिका को किसी ने पद्मश्री दिलाने तक का नहीं सोचा। श्री लखन खांडे खुद भी एक अच्छे गायक हैं और वे हमेशा अपनी पत्नी को इस पुरस्कार से सम्मानित होते देखना चाहते थें लेकिन उनका यह सपना अब कभी भी पूरा नहीं हो पायेगा। लोक संस्कृति के ऐसे प्रतिमानों को संरक्षित करने और सम्मान दिलाने में हम थोड़ा भी प्रयास करे, तो वह दिवंगत आत्मा के लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी। साथ ही लोक कलाकारों और लोक संस्कृति के संरक्षण में भी सराहनीय कदम होगा, जिसमें सरकार को सबसे पहले सामने आना चाहिए। यदि ऐसा किया जाता है, तो अस्मिता के संकट से जूझ रहे तथा तंगहाल जीवन जीने वाले लोक कलाकार खुशहाल जीवन जी सकेंगे और लोक संस्कृति के प्रति लोक कलाकारों का समर्पण सार्थक सिद्ध होगा।

❐ **सहायक प्राध्यापक**
पत्रकारिता एवं जनसंचार

डॉ सम्पूर्णानन्द झा

कवि कोकिल विद्यापति

1352-1547

विद्यापति मध्यकालीन युग के गीतगोविंद के रचनाकार जयदेव (बारहवीं शताब्दी), वैराग्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक रामानंदाचार्य (1244–1411) के बाद परन्तु संत रविदास (1433–1518), निर्गुण काव्यधारा के प्रवर्तक संत कबीरदास (1455–1551), कृष्णभक्त कवयत्री मीरा (1498–1546), गोस्वामी तुलसीदास (1532–1623) और रहीमदास (1556–1627) से पहले के एक प्रसिद्ध मैथिली कवि थे। इनका संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश, अवहट्ट एवं मातृ भाषा मैथिली पर समान अधिकार था । जिन्होने संस्कृत, अवहट्ट एवं मैथिली भाषा में अनेक रचनाएँ की ।

मैथिली साहित्य में मध्यकाल के तोरणद्वार पर जिसका नाम स्वर्णाक्षर में अंकित है, वे चौदहवीं शताब्दी के संघर्षपूर्ण वातावरण में उत्पन्न, अपने युग के प्रतिनिधि, मैथिली साहित्य सागर का वाल्मीकी, कवि कोकिल विद्यापति ठाकुर है। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महाकवि के व्यक्तित्व में एक साथ चिन्तक, शास्त्रकार, कवि तथा साहित्य रसिक का अद्भुत समन्वय मिलता हैं।

विद्यापति का जन्म सन् 1352 में बिस्फी ग्राम, जिला मधुबनी, बिहार राज्य के मिथिला क्षेत्र के एक विद्यानुरागी ब्राह्मण परिवार में हुआ था । इनके पितामह जयदत्त ठाकुर एवं पिता गणपति ठाकुर जो संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान और राजाश्रित पण्डित थे । इनके गुरू का नाम पण्डित हरि मिश्र था ।

महाकवि विद्यापति के पारिवारिक जीवन के संदर्भ में ज्ञात होता है कि उनके दो विवाह हुए थे । प्रथम पत्नी से दो पुत्र नरपति और हरपति तथा दुसरी पत्नी से एक पुत्र वाचस्पति ठाकुर तथा एक पुत्री संभवतः दुल्लहि थी । कालान्तर में विद्यापति के वशंज किसी कारणवश विस्फी को त्यागकर ग्राम–सौराठ, जो ब्राह्मण का सभा गाक्षी (बगीचा) के नाम से प्रसिद्ध है में आकर बस गयें ।

विद्यापति नाम संस्कृत भाषा से सम्बन्धित है, ''विद्या'' का अर्थ ज्ञान एवं ''पति'' का अर्थ स्वामी होता है । जिसका सम्मिलित स्वरूप ''ज्ञान से सज्जित पुरूष'' होता है। विद्यापति अपने नाम के अनुकूल भारतीय साहित्य के श्रृंगार परम्परा के साथ–साथ भक्ति परम्परा के प्रमुख स्तम्भों में से एक और मैथिली भाषा के सर्वोपरि कवि के रूप स्थापित है ।

विद्यापति शैव सम्प्रदाय के कवि थे तथा उनकी पदावली में भक्ति एवं श्रृंगार का समन्वय दिखाई पड़ता है । उनको वैष्णव, शैव और शाक्त के सेतु के रूप में स्वीकार किया गया है । उनकी काव्यों में मध्यकालीन मैथिली भाषा के स्वरूप का दर्शन हो जाता है ।

विद्यापति ऐसे समय में हुए जब चिन्तन की भाषा संस्कृत और साहित्य की भाषा अपभ्रंश थी । कहा जाता है कि उन्होने अनेक शास्त्रीय विषयों पर कालजयी रचना करके अपने पूर्वजों की परम्परा को आगे बढ़ाया । विद्यापति ने लम्बी आयु पाई थी और इन्हें कई राजाओं का संरक्षण प्राप्त हुआ । राजा नरसिंह देव की आज्ञा से उन्होंने संस्कृत में ''विभागसार ग्रंथ'' लिखा जिसमें संम्पति के विभागों और अधिकारों का वर्णन है । ''दान वाक्यावली'' में दान की महिमा तथा विधि पर प्रकाश डाला गया है । इन्होने संस्कृत में :– **''भूपरिक्रमा''** (राजा देव सिंह के समय में) इसमें बलराम से सम्बन्धित शाप की कहानियों के बहाने मिथिला के प्रमुख तीर्थ– स्थलों का वर्णन है। **पुरूष परीक्षा, लिखनावली, शैवसर्वस्वसार– प्रमाणभूत पुराण–संग्रह, दानवाक्यावली, गंगावाक्यवली, दुर्गा भक्ति तरंगिणी, गयापत्तलक, वर्षकृत्य, मणिमन्जरी नाटक, गोरक्षविजय** नाटक लिखकर आप ने साहित्य जगत में अपनी श्रेष्ठता किया था ।

चौदहवी सदी में विद्यापति ने अवहट्ठ में **कीर्तिलता** (जिसका मूल संस्कृत छाया तथा हिन्दी अनुवाद उपलब्ध है) और **कीर्तिपताका** जबकी– मैथिली में **पदावली** (मूल पाठ, पाठ–भेद, हिन्दी अनुवाद एवं पाद–टिप्पणियों से युक्त) काव्य की रचना की है, जिससे आप हिन्दी साहित्य में भी प्रसिद्धि प्राप्त की। जिसके आधार पर विद्यापति हिन्दी में राधा–कृष्ण विषय का श्रृंगारी काव्य का जन्मदाता के रूप में जाने जाते है।

संस्कृत में रचित इनकी रचनाएं जहां एक ओर इनके गहन पाण्डित्य के साथ इनके युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा स्वरूप का साक्षी है तो दूसरी तरफ कीर्तिलता एवं कीर्तिपताका महाकवि के भाषा पर सम्यक ज्ञान के सूचक होने के साथ–साथ ऐतिहासिक साहित्यिक एवं भाषा सम्बन्धी महत्व रखने वाला आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का अनुपम ग्रन्थ है। काव्य रचना के क्षेत्र में विद्यापति का प्रादुर्भाव एक क्रान्तिकारी युग की शुरूवात थी । चौदहवीं शताब्दी में काव्यों की रचना संस्कृत में किया जाता था परन्तु महाकवि ने मुनष्य के बदलते हुए पसंद की नब्ज को बहुत पहले ही पकड़ लिया तथा आम भाषा अवहट्ट में काव्य रचना की। जिसके कारण उन्हें तत्कालीन विद्वानों की आलोचना सहनी पड़ी ।

कीर्तिलता के बारे में साहित्यकारों ने टिप्पणी की है कि ऐसा जान पड़ता है कि कीर्तिलता बहुत कुछ उसी शैली में लिखी गई थी जिसमें चन्दबरदाई ने पृथ्वीराज रासों लिखा था। यह भृंग और भृंगी के संवाद–रूप में है । इसमें संस्कृत और प्राकृत के छन्दों का प्रयोग हुआ है, पदावली और कीर्तिलता उनके द्वारा रचित रचनाओं में अमर रचना है। कीर्तिलता की एक प्रमुख विशेषता यह है कि कहीं–कहीं उनकी कविताओं के बीच में गद्य के दर्शन भी होते है। यह वीर रस प्रधान रचना है जबकि पदावली श्रृंगार व भक्ति का मिश्रण है। इस प्रकार उनकी रचना में वीर, श्रृंगार व भक्ति का अद्भुत समन्वय है। उन्होंने पदावली में आंतरिक एवं बाह्य दोनों रूपों का चित्रण बड़े सहज ढंग से किया है जिसमें नायक एवं नायिका के नख शिख वर्णन, वय–संधि, नोक–झोक, प्रेम क्रीड़ा में लीन, स्मरण, राधा का प्रेम प्रसंग, विरह, प्रकृति चित्रण आदि विषयों का वर्णन किया है। अतः यह कहा जाता है कि उनकी पदावली में लौकिक एवं अलौकिक प्रेम का सर्वांग रूप चित्रित है। निराला ने पदावली की मादकता को **नागिन की लहर** कहा है। इसमें राधा और कृष्ण के प्रेम तथा उनके अपूर्व सौंदर्य चित्रों के वर्णन का भरमार है।

इस प्रकार पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विद्यापति ने राधा–कृष्ण के प्रेम की ऐसी अवधारणा प्रस्तुत की है जिसके कारण वे शैव होकर भी राधा–कृष्ण भक्ति शाखा के कवि कहलाये। मैथिली भाषा के माधुर्य और कोमलकांत पदावली में भक्ति एवं श्रृंगार की ऐसी भावधारा उन्होंने बहायी कि सारा वैष्णव समाज उसमें डूब गया। राज प्रासाद से लेकर सुदूर ग्राम अंचलों तक इनके रचे गीत गुंजने लगे। आज के दिनों में भी मिथिला क्षेत्र अर्थात् उत्तरी बिहार और समवर्ती नेपाल के लोक व्यवहार में प्रयोग हो रहे गीतों में विद्यापति का श्रृंगार एवं भक्ति रस में रचित रचनाओं का गायन किया जाता है। मैथिली समाज में विद्यापति के पदावलियाँ, मौखिक परम्परा से एक से दूसरे लोगों में प्रवाहित होता रही हैं। विद्यापति द्वारा रचित पदावली (कविताओं) से सिर्फ मैथिली भाषा की साहित्यिक प्रेरणा ही प्रस्फुटित नहीं हुई अपितु हिन्दुस्तानी भाषा, बंड्गाली, नेवारी (काठमाण्डू का स्थानीय लोक भाषा) के साथ–साथ नेपाली भाषा का भी साहित्यिक प्रेरणा जन्म देने का श्रेय दिया जाता है ।

विद्यापति ने मिथिला वासियों में **''देंसिल बअना सब जन मिट्ठा''**, ते तैसन जम्पओं अवहट्टठा (अर्थात– अपने देश या अपनी भाषा सबको मीठी लगती है यही जानकर मैनें इसकी रचना की है) का सूत्र देकर उत्तरी बिहार और नेपाल के जनकपुर क्षेत्र में व्याप्त लोक भाषाओं की जन चेतना को जीवित रखने का महान प्रयास किया। इनकी कीर्ति का प्रमुख आधार मैथिली पदावली जो मिथिला के कवियों एवं गायकों का आधार आदर्श तो हैं ही साथ ही सीमावर्ती देश नेपाल का शासक, सामंत, कवि एवं नाटककारों का भी आदर्श बन, उनसे मैथिली में रचना करवाने लगे। बाद में बंगाल, असम तथा उड़ीसा के वैष्णव भक्तों में भी विद्यापति की पदावली का प्रभाव उनके रचना में प्रवाहित होने लगा ।

ओईनवार राजवंश के अनेक राजाओं ने महाकवि विद्यापति को अपने यहां सम्मान के साथ रखा उनमें प्रमुख हैः देवसिंह, कीर्ति सिंह, शिव सिंह, पद्म सिंह, धीर सिंह, भैरव सिंह और चन्द्र सिंह। विद्यापति मिथिला नरेश राजा शिव सिंह के प्रिय मित्र होने के साथ ही राजकवि और उनके सलाहकार भी थे। इसके अलावा महाकवि को इसी राजवंश की तीन रानियों–लखिमा देवी, विश्वासदेवी और धीरमति देवी का सलाहकार भी रहने का सौभाग्य प्राप्त था।

कुछ आलोचकों का कहना है कि वे दरबारी कवि थे, जिसके कारण उनकी रचनाओं में भी दरबारी वातावरण प्रभाव दिखाई देता है। वे अपने तर्क मे कहते है कि पदावली में कृष्ण के कामी स्वरूप का चित्रण है वहीं राधा जी का चित्रण मुग्धा नायिका के रूप में किया गया है। उन्होंने आगे लिखा है कि स्वयं पिद्यापति ने अपनी रचना कीर्तिपताका में लिखाा है – सीता की विरह वेदना सहन करने के कारण राम को काम–कला चतुर अनेक स्त्रियों के साथ रहने की उत्कट इच्छा से उन्होने कृष्णावतार लेकर गोपियों के साथ विभिन्न प्रकार से कामक्रीड़ा की । अतः उनकी दृष्टि में कृष्ण और राधा श्रृंगार रस के नायक–नायिका थे ।

परन्तु डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार राधा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन भक्ति–भावना के परिप्रेक्ष्य में देखे जाने चाहिए क्योंकि विद्यापति के पद लगभग सबके सब वैष्णव पद या भजन है और सभी हिन्दू बिना किसी काम–भावना का अनुभव किए विद्यापति की पदावली के पदों का गुणगान करतें है। श्री नगेन्द्र, डॉ. जनार्दन मिश्र विद्यापति के पदों का शुद्ध अध्यात्मभाव से युक्त, दार्शनिक गूढ रहस्यों से परिपूर्ण माना। इसी तरह डॉ. श्याम सुन्दर दास के अनुसार हिन्दी के वैष्णव साहित्य के प्रथम कवि मैथिल कोकिल विद्यापति है, उनकी रचनाएँ राधा और कृष्ण के पवित्र प्रेम से ओत प्रोत है ।

हिन्दी के प्राध्यापक डॉ वासुकीनाथ के अनुसार बारहवीं शताब्दी में गीतगोविंद (सन् 1116) के रचनाकार जयदेव (जन्म स्थान भुवनेश्वर के समीप केन्दुबिल्व नाम के ग्राम, ओडिसा में/जो बंगाल के नरेश लक्ष्मणसेन के आश्रित महाकवि थे) से प्रभावित होकर विद्यापति ने काव्य की रचनाएँ की। महाभारत में जहां श्री कृष्ण एक प्रेरक शक्ति के रूप में दिखाई देते है वहीं विद्यापति के पदावली में

कृष्ण राधा के सघन प्रेम के पिपासु के रूप में वर्णन किया गया है। विद्यापति पर महाकवि जयदेव के रचना के प्रभाव के कारण विद्यापति महाकवि अभिनव जयदेव कहलाये फलस्वरूप बंगाल में विद्यापति की भक्ति रचनाओं का प्रभाव सर्वाधिक पड़ा।

चैतन्य महाप्रभु महाकवि विद्यापति के गीतो को गाते गाते भाव विभोर होकर अपना सुध–बुध खो बैठते थे। इसी प्रकार विश्व कवि रविन्द्रनाथ टैगोर भी महाकवि विद्यापति के गीतो से आकृष्ट हुए जिसका प्रभाव उनके द्वारा रचित ''माहिन सिधेर पदावली'' में दृष्टिगोचर होती है।

मिथिला के जनश्रृतियों में आज भी है कि श्री गणति ठाकुर ने कपिलेश्वर महादेव की आराधना कर एक पुत्र रत्न को प्राप्त किया था और स्वयं भोलेनाथ ने कवि विद्यापति के यहाँ उगना (नौकर) बनकर चाकरी की थी। विभिन्न लेखों से स्पष्ट है कि विद्यापति शिव एवं शक्ति दोनों के बड़े भक्त थे। शक्ति के रूप में उन्होंने दुर्गा, काली, भैरवि, गंगा, गौरी आदि का वर्णन अपनी रचनाओं में यथेष्ठ किया है ।

महाकवि विद्यापति ने अपनी रचना से अपने जीवन काल से मरणोपरांत तक अपनी पहचान बनाए रखा और अपने जीवन काल में जितने लोकप्रिय थे उतने ही लोकप्रिय पॉच–छः शाताब्दी पश्चात् भी रहे। इसका मुख्य श्रेय उनके द्वारा रचित रचना विद्यापति पदावली में ''देवी स्तुति'' जो मुख्यतः मैथिली एवं अवहट्ट भाषा में है, को जाता है।

जय जय भैरवि असुर भयावनि,
पशुपति–भामिनी माया ।
सहज सुमति वर दिअओं गोसाउनि,
अनुगत गति तुअ पाया ।1।
वासर रैन शवासन शोभित,
चरण चन्द्रमणि चूड़ा ।
कतओक दैत्य मारि मुख मेललि,
कतओं उगिलि कैल कूडा ।2।
साँवर वरन नयन अनुरञ्जित,
जलद योग फुल कोका ।
कट कट विकट ओंठ पुट पाउंडरि,
लिधुर केनि उठ फोका ।3।
धन धन धनन घुँघरू कत बाजय,
हन हन कर तुअ काता ।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक,
पुत्र विसरू जीन माता ।4।

मैं ही क्यों, शायद ही मैथिली भाषा क्षेत्र का कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसके जिहवा पर ये गीत न हो । इसकी लोक प्रियता तो इसी बात से प्रमाणित होता है कि मिथिला क्षेत्र में हर शुभ अनुष्ठान में इस गीत को गाया जाता है, चाहे वह छोटे घर में शुभ काय हो या फिर बड़े मंच पर । इस गीत के माध्यम से विद्यापति ने मॉ जगदम्बा के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है । प्रथम पद का अर्थ है– हे ! असुरों और आसुरीवृत्ति को भय प्रदान करने वाली मॉ भैरवी। वो सब शिव प्रिया शिव पत्नी की ही माया है । हे गोसावनि। आप मुझे सहज, स्वभाविक बुद्धि का वर प्रदान करिये ताकि मुझे आपकी गति मिले ।

द्वितीय पद का अर्थ– घनघोर अन्धेरी रात्रि जो शवों से शोभित अर्थात भरी हुई है और आपका चरण सिर पर चन्द्रमॉ को मणि की तरह धारण करने वाले शिव यानि देवाधि देव महादेव के ऊपर रखा है । कितने ही दैत्यों को आपने अपने मुख में एक साथ पान की तरह चबा डाला है और कितनों को ही पान के पीक की तरह उगल दिया जिनका ढेर लग गया है ।

तृतीय पद का अर्थ– साँवला बदन और लाल ऑखे एसी लग रही है जैसे काले घने मेघ और सुबह के सूर्य का योग हो गया हो। आपके कटकटातें हुए दॉत होठों के मध्य चमेली के फूल की तरह श्वेत चमक रहे हैं और उसमें से रूधिर यानी खून झाग की तरह बाहर आ रहा है।

अंतिम पद का अर्थ– मेघ गर्जना की तरह आपके घुँघरू बज रहे है और वायु के तेज प्रवाह की तरह आपकी तलवार चल रही है। ऐसे में माँ मैं विद्यापति जो आपके

चरणों का दास हूँ, पुत्र हूँ हे माता आप मुझे मत भूल जाईयेगा। इस गीत के माध्यम से विद्यापति ने मॉ जगदम्बा के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है । भगवती के रूपों का इतना अच्छा वर्णन शायद ही कही और मिले । कवि ने इस स्तुति में एक पद में वीर रस तो दूसरे पद में श्रृंगार रस भरा है तो अंतिम पद में भक्तिरस का वर्णन किया है। इतने कम शब्दों में और इतने सारे रसों का प्रयोग करते हुए की गई रचना अन्यत्र दुर्लभ है ।

अतः जिस प्रकार तुलसी–सूरदास–कबीर–रहीम मानवीय भावनाओं की रमणीय अभिव्यक्तियों के कारण कभी अप्रासंगिक नहीं हो सकते वैसे ही महाकवि विद्यापति की प्रासंगिकता आने वाले शताब्दियों में भी बनी रहेगी ।

मिथिला के लोगों में यह बात आज भी व्याप्त है कि जब महाकवि विद्यापति अति वृद्ध रूग्न हो गए तो अपने पुत्रों और परिजनों को बुलाकर यह आदेश दिया कि ''अब मैं इस शरीर का त्याग करना चाहता हूँ । मेरी ईच्छा है कि मैं गंगा के किनारे गंगाजल को स्पर्श करता हुआ अपने दीर्घ जीवन की अन्तिम सॉस लूँ । अतः आप लोग आज ही मुझे गंगालाभ कराने के लिए सिमरिया घाट (गंगातट) ले चले। महाकवि ने सर्वप्रथम गंगा को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया, फिर जल में प्रवेश कर निम्नलिखित ''**गंगा–स्तुति**'' की रचना की :–

बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरें ।
छाड़इत निकट नयन बह नीरे ।।
करजोरि बिलमओं बिमल तरंगे ।
पुनि दरसन होए पुनमति गंगे ।।
एक अपराध छेमब मोर जानी ।
परसल माय पाए तुअ पानी ।।
कि करब जप तप जोग–ध्याने ।
जनम् कृतारथ एकहि स्नाने ।।
भनई विद्यापति समदओं तोहीं ।
अन्तकाल जनु बिसरहु मोही ।।

जन श्रुति की माने तो विद्यापति की यह स्तुति मॉ गंगे ने स्वीकार की थी और उनको अंतिम समय में दर्शन भी दी थी ।

जन्मतिथि के तरह महाकवि विद्यापति की मृत्यृ के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है । डॉ0 सुभद्र झा इस सम्बन्ध में टिप्पणी करते है कि विश्वस्त अभिलेखों के आधार पर उनका मृत्यृ सन् 1447–48 मानते है । जनश्रृतियों के अनुसार वर्तमान वेगूसराय जिला के मउबाजिदपुर के पास गंगातट पर महाकवि ने प्राण त्याग किया। जनश्रृतियों में प्रचलित है : **विद्यापतिक** की आयु अवसान, कातिक धवल त्रयोदसि जान।

पद्म श्री उषा किरण खान ने मंत्रिमंडल सचिवालय, राजभाषा विभाग की ओर से बिहार राज्य अभिलेख भवन में कवि कोकिल विद्यापति जयंती समारोह कार्यक्रम की अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि मिथिलांचल के लोक व्यवहार में प्रयोग किए जाने वाले गीतों में आज भी विद्यापति के श्रृंगार और भक्ति रस की रचना जीवित है। पदावली और कीर्तिलता इनकी अमर रचनाएँ है। इसी कार्यक्रम में मंत्रीमंडल सचिवालय, राजभाषा विभाग, झाारखंड के सेवानिवृत्त उप निदेशक अम्बरीकान्त ने कहा विद्यापति ने सर्वहारा बनकर अपनी रचनाऐं लिखते रहे जिस कारण पंडितों ने उनका विरोध करना शुरू कर दिया था जिसके कारण उनका जीवन काफ़ी संघर्ष पूर्ण हो गया ।

मंत्रिमंडल सचिवालय राजभाषा विभाग के निदेशक इम्तियाज अहमद ने विद्यापति को भक्ति परम्परा के प्रमुख स्तंभ के रूप में चिन्हित किया और कहा कि विद्यापति मैथिली के सर्वोपरि कवि हुए, इनके काव्य में मध्यकालीन हिन्दी भाषा के स्वरूप का दर्शन किया जा सकता है।

❐ **उप–कुलसचिव**
परीक्षा

संदर्भ : चरनदास चोर

डॉ. अखिलेश गुप्ता

छत्तीसगढ़ की कलम कहानी राजस्थान की

लोक शब्द के अभिप्राय से जुड़ी कई भ्रांतियों का निवारण करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका सटीक आशय स्पष्ट किया। "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों या ग्रामों में फैली हुई समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है। ये लोग नगर में रहने वाले परिष्कृत रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अति सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं। परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।"[1] '**लोक**' शब्द के संकुचित अर्थ के दायरे को विस्तृत करते हुए साहित्य में वे 'लोक' पर विशेष ध्यान केंद्रित करते हैं। इसी कारण तुलसीदास की तुलना में वे कबीर को लोक के अधिक नजदीक पाते हैं और शिष्ट साहित्य की तुलना में लोक साहित्य में वे मानवीय संवेदनाओं की सांद्र अभिव्यक्ति को महसूस करते हैं।

लोक साहित्य जो कि युगों–युगों से मौखिक परंपरा से चली आ रही होती है, न इसके रचयिता का अक्सर पता चल पाता है और न ही रचनाकाल का सही–सही अनुमान लगा पाना संभव हो सकता है। फिर भी इसकी खासियत यह है कि वर्तमान समय का व्यक्ति उसे अपने समय की उपज मानता है। चूँकि यह श्रुति परंपरा की देन है, इसलिए व्यक्ति उसमें अपने समय के अनुरूप संशोधित परिवर्धित करता रहता है। आज वैज्ञानिक युग में जबकि इसके संरक्षण हेतु अनेक प्रविधियां प्रयोग में लाई जा रही है, फिर भी उसमें परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन ही लोक साहित्य की ऐसी शक्ति है, जिसके कारण वह कई–युगों तक संरक्षित रह पाने में समर्थ हो पाता है और सहज ही लोगों की जुबान पर बना रहता है।

लोक साहित्य और जन साहित्य में विभेद करते हुए 'लोक साहित्य, संस्कृति और समाज' में प्रताप सहगल लिखते हैं– ''जन साहित्य भले ही आम जन की पीड़ाओं, संघर्षों एवं आकांक्षाओं को केंद्र में रखकर लिखा जाता है, लेकिन वह अपेक्षाकृत अधिक सुगठित, जन चेतना की सामूहिक अभिव्यक्ति और प्रायः राजनीतिक विचारधारा से आप्लावित होता है। वह जनकल्याण की भावना तथा किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रतिबद्ध होता है। भारतीय संदर्भों में वामपंथी, जनपक्षी, दलित एवं आदिवासी साहित्य को इस कोटि में रखा जा सकता है, जबकि दक्षिणपंथी विचारधारा से प्रेरित साहित्य जन की बजाय संभ्रांत व्यक्ति को महत्व देता है और प्रायः यथास्थितिवाद का समर्थक होता है। लोक साहित्य व्यक्ति केंद्रित हो ही नहीं सकता। प्रायः वह मौखिक परंपरा से प्राप्त लोक–रंजन के लिए होता है, कहीं उसमें बदलाव की आकांक्षा भी हो सकती है और उसमें सांस्कृतिक घटक गूँथे रूप में आते हैं तथा पीढ़ी–दर–पीढ़ी हो रहे संक्रमण के दौरान उसमें कई स्थानीय परिवर्तन होते रहते हैं । इस तरह देखा जाये तो लोक–साहित्य बेहद लचीला और सर्वग्राही होता है।"[2]

साहित्य में **'लोक'** तत्व को लेकर रंगकर्म में अभिनव प्रयोग करने वाले रंगकर्मी हैं– 'हबीब तनवीर'। इन्होंने रंगकर्म के माध्यम से 'लोक' की ऊर्जस्विता को पहचानकर उसे सफलता की बुलंदियों पर पहुँचा दिया। छत्तीसगढ़ में प्रचलित नाचा में कलाकारों द्वारा तुरंत संवाद बना–बनाकर लोगों को हँसाते हुए कथानक को आगे बढ़ाते जाने की एक विशिष्ट परंपरा रही है। नाचा के दौरान कलाकार आंचलिक दृश्यों को प्रस्तुत करते हुए सेठ, महाजनों का स्वांग रचते हैं। दर्शकों को हँसाते–हँसाते गंभीर प्रकरण पर सोचने हेतु विवश कर देने की अद्भूत क्षमता इन कलाकारों के पास रहती है। नाचा के दौरान दर्शक अपनी जगह से टस–से–मस तक नहीं होते। कलाकारों के इस गुणधर्म से हबीब तनवीर परिचित थे। इसी कारण बहुतेरे नाटकों में नाचा के कलाकारों के साथ उन्होंने काम किया। लोक प्रचलित कहानियों को सुनाकर उसमें नाटक के सारे तत्व अभिनय की प्रयोगशाला से प्राप्त करते थे। नाटक 'चरन दास चोर' की भूमिका में उन्होंने इसका जिक्र किया है, "1973 में रायपुर नाचा वर्कशॉप में पहली बार सीखा था जिसके नतीजे में 'गाँव के नाँव ससुरार मोर नाँव दामाद' जैसा नाटक निकलकर आया था। सबक ये था कि कभी किसी वर्कशॉप के लिए सारी बातें पहले से सोचकर मत जाओ। इलाके में पहुँचकर वहाँ के हालात देखो, कलाकारों को मंथन में डालो, और इन्हीं परिस्थितियों से जो प्रेरणा मिले और जो कहानी उत्पन्न होती नजर आए, बस उसके सहारे आगे बढ़ते चलो यही एक रास्ता है !"[3] यही कारण है कि इनके नाटकों के में लोक–पक्ष घनीभूत हो उठा है :

"गुरुजी : तोर में का एब हे बेटा ?
रामचरण : मोर में कोई एब नइ हे गुरुजी (बीड़ी निकालता है, पीता है और बीड़ी का सारा धुआँ गुरुजी के मुँह पर आता है)
गुरुजी : अरे बिना एब के आदमी तो आज तक संत अखाड़ा में नइ आये हे तैं कहां से आगेस रे (खांसी आती है धुएं के कारण) बेटा रामचरण ये कहां के धुआँ ? ये बाबू सब नाक कान में घुसगे रे ?
रामचरण : पावर हाऊस के होही जी"[4]

छत्तीसगढ़ में भिलाई और उनके आसपास नाचा का ऐतिहासिक महत्त्व रहा है। स्टील प्लांट भिलाई में स्थित पावर हाऊस से पूरे प्लांट में बिजली सप्लाई किया जाता रहा है। पावर हाऊस से निकलने वाला धुआँ लोगों के स्वास्थ्य और पर्यावरण पर कितना घातक प्रभाव डाल रहा था और इसकी तुलना में बीड़ी से निकलने वाले धुएँ का दुष्प्रभाव कितना बौना साबित होता है व्यंग्य के माध्यम से चित्रित हो जाता है और ये सारे संवाद गवंई जन–जीवन में सहज उद्भूत वाक्पटुता के साथ प्रकट होती है।

हबीब तनवीर थिएटर में पाश्चात्य शैली से कभी प्रभावित नहीं हुए। न ही कभी सफलता के ऊँचे मकाम हासिल करने के लिए उसका नकल किया। रंगकर्म में आंचलिक जीवन की छाप को वे विशेष तवज्जो देते रहे। वे कहते हैं,

"थिएटर को अपने मुल्क, अपने समाज की जिंदगी, अपने मुल्क की शैली में कुछ इस तरह पेश करना चाहिए कि बाहर के लोग यह देखकर कह सकें कि ये भी एक थिएटर है, थिएटर के सारे लवाजमात तत्त्व उसमें मौजूद हैं, हमें उसमें वही मजा आता है जो थिएटर में आना चाहिए लेकिन अगर हम ऐसा थिएटर खुद करना चाहें तो नहीं कर सकेंगे। यानी थिएटर में इलाकाइयत (आंचलिकता) का दामन न छोड़ते हुए विश्व स्तर पर पहुँचना कामयाब थिएटर की कुंजी है।"[5] ठेठ आंचलिकता के कारण महत्वहीन समझकर पहले जिसे लंदन के कामनवेल्थ थिएटर में प्रदर्शन पर हमारी सरकार विरोध कर रही थी। उसी का जब लंदन के सारे प्रमुख अखबार में **'चरन द् थीफ'** नाम से रिव्यु प्रकाशित होने लगा, सरकार भी तारीफे करने लगी।

बहरहाल लोक प्रचलित नाचा पर अभिनव प्रयोग करते हुए उसे वैश्विक पटल पर स्थान दिलाना कोई सहज काम नहीं है। आत्मविश्वास के साथ–साथ दृढ़ लगन व परिश्रम की जरूरत होती है। आंचलिक बोली में प्रस्तुत संवाद से उनमें कभी हीनता बोध नहीं हुआ, इसके विपरीत छत्तीसगढ़ी उनकी भाषाई अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गई। भाषाई हीनता से पीड़ित व्यक्ति अपने आंचलिक परिवेश से कटने लगता है। लोकमंगल के विधान की सशक्त अभिव्यक्ति में कमी का कारण भी यही भाषाई हीनता बोध ही है। हबीब तनवीर इन धारणाओं से कोसों दूर थे। उनके लिए लोक ही सर्वोपरि रहा–

> "दुनिया में बादशाह है सो वह भी आदमी
> और मुफलिसो–गदा है सो है वह भी आदमी
> काला भी आदमी है और उल्टा है ज्यूं तवा
> गोरा भी आदमी है कि टुकड़ा–सा चांद का
> बदशक्लो–बदनुमा है, सो है वह भी आदमी"[6]

आदमी–आदमी में किए जाने वाले विभेदों को भुलाकर लोक को सर्वोपरि मानने वाला नजीर का यह संदेश हबीब तनवीर के साथ ही रेणु के व्यक्तित्व की भी याद दिलाता है। **'कवि की यात्राएँ'** में रघुवीर सहाय लिखते हैं, "रेणु ने दूसरों में ऐसे किसी दम्भ को कभी इतना महत्त्वपूर्ण नहीं पाया कि या तो जवाब में कोई आंचलिक मुद्रा अपनाते या तथाकथित महानगरी साहित्य की नकल करने लगते। उनके लिए लोग ही सत्य थे–वहाँ तक सत्य जहाँ तक वह उन्हें जानते थे और उनसे एक हो सकते थे–चाहे वे कहीं के रहनेवाले हों। यह आस्था उनमें आजीवन बनी रही।"7

सामंतवादी व्यवस्था किस प्रकार शोषण करती आ रही थी इसका स्पष्ट चित्रण 'चरन दास चोर' में हुआ है। मालगुजार सेतुवावाले का सेतुवा और पैसे छीन लेता है, नौबत भूखों मरने की आ गई है। चरन दास की बातों से बल पाकर मालगुजार के पास सेतुवावाला चला जाता है।

दृश्य है–
"चोर : अइसे लगाहूं खिंच के तोर सारी जम्हड़ा झड़ जाही जा एक धांव अउ मांग के देख
सेतुवावाला : तैं इही मेर खड़े रबे ना ?
चोर : हव
(सेतुवावाला घबराते–घबराते जाता है और मालगुजार की गद्दी पर बैठ जाता है)
मालगुजार : आ... मोर मुंडी उपर बइठ जा
सेतुवावाला : गलती होगे मालिक
मालगुजार : गलती नइ होये रे तुमन आदमी ला चिन्हव नइ !"[8]

एक तो चोरी, ऊपर से सीनाजोरी यह कि सेतुवा वाला गद्दी में जैसे ही बैठा दुत्कार दिया गया। ऐसी सामंतवादी व्यवस्था जिसमें आम आदमी की गलती यह है कि उसका सब कुछ छीन जाने के पश्चात् भी छीनने वाले से सलीके से व्यवहार न करने पर स्वयं लज्जित महसूस कर रहा है।

दृश्य : तीन के अंत में मंदिर के सारे सामानों के साथ मूर्ति चोरी हो जाने पर आसपास में यह प्रकरण जंगल की आग की तरह फैल जाता है। छत्तीसगढ़ में सुआ गीत के माध्यम से अपने समय की विडंबनाओं का बखान करने की परंपरा है। इसलिए मूर्ति चोरी हो जाने की कथा भी सुआ गीत में शामिल हो गई–

"तरीच नारी नाहा ना मोर नाहा नारी ना ना रे
सुआ हो तरी ओ नारी नाहा नारी ना
नारे सुआ हो तरी ओ नारी नाहा नारी ना
का कहइबो या सोचेला होगे
कइसे ढंग बताबो दीदी परोसिन,
छोड़त नइये वोहर एको खोर
परोसिन देख तो बहिनी आवत हाबे चोर
परोसिन देख तो बहिनी आवत हाबे चोर
ऽऽऽऽ तरीच नारी..."[9]

गुरु के साथ मजा–मसखरा करते हुए किए गए चार वचनों को अंत तक निभाते रहने और कभी झूठ न बोलने के कारण राजतंत्र की व्यवस्था चोर की जान ले लेती है। उसे झूठ बोलने के लिए बाध्य किया जाता है। तरह–तरह के लोभ और लालच के जाल में फंसाने की कोशिश की जाती है। झूठ की शरण में जाकर सत्ता सुख भोगने के बरक्स वह सच्चाई की राह पर चलकर मौत का वरण कर लेता है।

ऐसे नाटक के मंचन पर 2009 में छत्तीसगढ़ सरकार ने रोक लगा दिया। दलील यह दिया गया कि सतनामी गुरु बालदास की आपत्तियों के मद्देनजर ऐसा किया गया है। इस पर पर्दाफाश करते हुए जन संस्कृति मंच के महासचिव प्रणय कृष्ण बताते हैं, "मूलतः राजस्थानी लोककथा पर आधारित यह नाटक श्री विजयदान देथा ने लिखा था जिसका नाम था, **'फितरती चोर'**। हबीब साहब ने इसे छत्तीसगढ़ी भाषा, संस्कृति, लोक नाट्य और संगीत परंपरा में ढालने के क्रम में मूल नाटक की पटकथा और अदायगी में काफी परिवर्तन किये। **'चरणदास चोर'** अनेक दृष्टियों से एक समकालीन क्लासिक है। एक अदना सा चोर गुरु को दिए चार वचन कि सोने की थाली में वह खाना नहीं खाएगा, कि अपने सम्मान में हाथी पर बैठ कर जुलूस में नहीं निकलेगा, राजा नहीं बनेगा और किसी राजकुमारी से विवाह नहीं करेगा के अलावा गुरु द्वारा दिलाई गई एक और कसम कि वह कभी झूठ नहीं बोलेगा, का पालन अंत तक करता है और इन्हीं वचनों को निभाने में उसकी जान चली जाती है। चरणदास को कानून और व्यवस्था को चकमा देने की सारी हिकमतें आती हैं। वह बड़े लोगों को चोरी का शिकार बनाता है। नाटक में चरणदास के माध्यम से सत्ता–व्यवस्था, प्रभुवर्गों और समाज के शासकवर्गीय दोहरे मानदंडों का खेल खेल में मजे का भंडाफोड़ किया गया है। एक चोर व्यवस्था के मुकाबले ज्यादा इंसाफ पसंद, ईमानदार और सच्चा निकलता है। जाहिर है कि यह नाटक लोककथा पर आधारित है।... कहीं यह नाटक छत्तीसगढ़ राज्य बनने के बाद से ही उस राजसत्ता के चरित्र को तो ध्वनित नहीं कर रहा, जो उस प्रदेश के सारे ही प्राकृतिक संसाधनों के कार्पोरेट लुटेरों के पक्ष में व्यवस्था विरोधी मूल्यों और आकांक्षाओं को वाणी तो नहीं दे रहा? कहीं यह नाटक अपनी क्लासिकीयता के चलते एक बिल्कुल अप्रत्याशित तरीके से आज के छत्तीसगढ़ की सत्ता और लोक के बीच जारी संग्राम की व्यंजना तो नहीं करने लगा? यह सारे ही सवाल इस प्रतिबंध के साथ उठने स्वाभाविक हैं।"[10] गुरु को दिए गए चार वचनों के पालन करते समय चोर अनजाने ही सत्ता के वाम–पक्ष में अपने को खड़ा पाता है, जिसके कारण लोक की चिंताओं के बरक्स सत्ता का लुभावना रूप उसे नहीं सुहाता। सत्ता का सर्वाधिकार अपने पक्ष में सुरक्षित रखने का सबसे सशक्त माध्यम क्या ये चारों वचन नहीं हैं ? अपने को श्रेष्ठ साबित करने का एक विधान हमारे भारत में हाथी पर बैठकर जुलूस निकालना रहा है। ताकि इसी बहाने मसीहाई बाना का खुमार लोगों के सामने बना रहे। हबीब तनवीर के इस नाटक से पूर्व बालमुकुन्द गुप्त अपने निबंधों में ब्रिटिश शासन पर तीखा व्यंग किया है । लार्ड कर्जन द्वारा हाथी पर बैठकर जुलूस निकालने की घटना का जिक्र करते हुए निबंध **'श्रीमान का स्वागत'** में कहते हैं, "विलायतवासी यह नहीं समझ सकते कि हिंदुस्तान क्या है ? हिंदुस्तान को श्रीमान स्वयं ही समझे हैं। विलायत वाले समझते तो क्या समझते ? विलायत में उतना बड़ा हाथी कहाँ जिस पर वह चंवर छत्र लगाकर चढ़े थे ? फिर कैसे समझा सकते कि वह किस उच्च श्रेणी के शासक हैं ? यदि कोई ऐसा उपाय निकल सकता, जिससे वह एक बार भारत को विलायत तक खींच ले जा सकते तो विलायत वालों को समझा

सकते कि भारत क्या है और श्रीमान का शासन क्या?"[11] एक अन्य निबंध 'वैसराय का कर्तव्य' में वे इसकी पुरातन परंपरागत रूढ़ मान्यता की उस सीढ़ी तक पहुँच जाते हैं, जब देश की "प्रजा एक दिन पहले रामचंद्र के राजतिलक पाने के आनंद में मस्त थी और अगले दिन अचानक रामचंद्र वन को चले तो रोती रोती उनके पीछे जाती थी । भरत को उस प्रजा का मन रखने के लिए कोई भारी दरबार नहीं करना पड़ा, हाथियों का जुलूस नहीं निकालना पड़ा, बरंच दौड़कर बन में जाना पड़ा ।"[12] देश की राजतंत्रात्मक व्यवस्था के मूल में अपने को असाधारण रूप से ऊँचा दिखाने की यह प्रथा निहित थी और स्वाधीनता के बाद भी लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में सत्तासीन इन्हीं बातों का अनुकरण करते रहे हैं। छत्तीसगढ़ शासन द्वारा इसे प्रतिबंधित करने का एक और कारण सत्ता और जनता के बीच बनाए जा रहे इसी आडंबरयुक्त दुराव को मान सकते हैं ।

नाटक की शुरुआत का गीत याद आ रहा है, "सत के तराजू में दुनिया ला तौलो हो...2 / गुरुजी बताइने सच सच बोलो हो...2/ सच के बोलइया मन हावे दुई चारध वही गुरु हे हमार..."13 यह वही सच है जिस पर चलते–चलते एक मामूली–सा चोर गैर–मामूली बन जाता है, जिससे पूरी सत्ता–व्यवस्था की चूलें हिल जाती है। इस दौरान वह चोर रानी का चित्तचोर बन जाता है और लोकजन से आत्यंतिक लगाव के कारण अंत तक आते–आते वह सबका चित्त चोर बन जाता है । अंततः अपनी सत्ता कायम रखने के लिए अपने इस चोर प्रेमी की नृशंस हत्या ही रानी को तार्किक लगती है। इसीलिए हबीब साहब कहते हैं, "मेरे नजदीक नाटक का विषय यही था कि सच्चाई का दामन पकड़े रहना जान जोखिम में डालना है। अगर यही हश्र सुकरात का हुआ, ईसा मसीह का हुआ और फिर एक मामूली चोर का भी यही अंजाम हुआ, तो उसका दर्जा किसी महापुरुष से कम नहीं है।"[14]

❐ **सहायक प्राध्यापक, अस्थायी**

हिंदी

संदर्भ सूची :

1. जनपद, अंक 1952, पृ. 65
2. प्रताप सहगल, 'समय के सवाल', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ. 22
3. हबीब तनवीर, 'चरन दास चोर', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति संस्करण 2008, पृ. 9
4. वही, पृ. 36
5. वही, पृ. 24
6. हबीब तनवीर, 'आगरा बाजार', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005, पृ.108
7. फणीश्वर नाथ रेणु, 'ऋणजल धनजल', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण 2005, पृ. 12
8. हबीब तनवीर, 'चरन दास चोर', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति संस्करण 2008, पृ. 46
9. वही, पृ. 54
10. प्रणय कृष्ण, 'हद है! अब 'चरण दास चोर' पर प्रतिबंध', कबाड़खाना (वेब पत्रिका), 9 अगस्त 2009
11. रेखा सेठी (सं.), 'निबंधों की दुनिया : बालमुकुन्द गुप्त', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, पृ. 26
12. वही, पृ. 30
13. हबीब तनवीर, 'चरन दास चोर', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति संस्करण 2008, पृ. 29
14. वही, पृ. 27

डॉ. अनुपमा कुमारी

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और उच्च शिक्षा

भूमिका :

भारत सरकार द्वारा घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी 2020) कोविड–19 महामारी से उत्पन्न चुनौतियों और नकारात्मकता के बीच एक अप्रत्याशित किन्तु स्वागत योग्य, परिवर्तनकारी खबर थी। इस नीति का देश की उच्च शिक्षा प्रणाली पर सकारात्मक और लंबे समय तक प्रभाव पड़ने की उम्मीद जताई जा रही है। यह भी उम्मीद की जा रही है कि विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में अपना परिसर खोलने की अनुमति दी जाएगी जिससे छात्रों को अपने ही देश में शिक्षा की वैश्विक गुणवत्ता का अनुभव प्राप्त हो सकेगा। लेकिन इस पर चर्चा करने से पहले यह जानना जरूरी है कि आखिर यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति है क्या? चलिए जानते हैं...

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) क्या है?

यह भारतीय लोगों के बीच शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों का एक ढांचा है, जो देश में शिक्षा के विकास का मार्गदर्शन करेगी। इस तरह का ढांचा सर्वप्रथम वर्ष 1968 में बनाया गया था जिसे पुनः वर्ष 1986 में संशोधित किया गया।समय की मांग के अनुसार 1992 में इसकी पुनर्समीक्षा और अपडेट किया गया। तब से लेकर अब तक पूरी दुनिया और समग्र क्षेत्र में बड़े पैमाने पर परिवर्तन देखा गया है। इसलिए पिछले साल 2020 में सरकार ने इन नीतियों को संशोधित करने का फैसला किया ताकि उन्हें शिक्षा की पारिस्थितिकी तंत्र के लिए अधिक प्रासंगिक और बाध्यकारी बनाया जा सके। इनमें से कुछ बिंदुओं को यहाँ बताना जरूरी है।

प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा –

- राष्ट्रीय पाठयक्रम और शैक्षणिक ढांचा को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) द्वारा विकसित किया जाएगा तथा आठ वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय पाठयक्रम और शैक्षणिक ढांचा विकसित किया जाएगा।
- कक्षा छह से कोडिंग शुरू की जाएगी और गणितीय सोच तथा वैज्ञानिक सोच स्कूली पाठ्यक्रम का हिस्सा होगी।
- बोर्ड परीक्षाएं दो भागों में आयोजित की जाएंगी– एक उद्देश्य और दूसरा वर्णनात्मक। इन परीक्षाओं को रटने की सीख के बजाय ज्ञान अनुप्रयोग को बढ़ावा देने के लिए डिजाइन किया जाएगा। बोर्ड की परीक्षा का व्यावहारिक मॉडल विकसित किया जाएगा।
- छात्रों के लिए धाराओं का चयन विशेष पृथक्करण कर नहीं किया जाएगा। सह पाठयक्रम और पाठ्येतर क्षेत्रों के बीच कोई अलगाव नहीं होगा और कला, संगीत, शिल्प, खेल, योग आदि सहित सभी विषय समग्र पाठ्यक्रम का हिस्सा होंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 कौशल विकास पर विशेष जोर देते हुए एक समग्र व्यक्तित्व विकास की शिक्षा प्रणाली बनाना चाहती है।

उच्च शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति–

भारत सरकार, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एनईपी द्वारा नए विचारों के साथ सकारात्मक बदलाव और सुधार की ओर तत्पर दिखाई देती है। आइए एक नजर डालते हैं–

- उच्च शिक्षा के लिए एकल नियामक निकाय– एनईपी का उद्देश्य ऐसे भारतीय उच्च शिक्षा आयोग की स्थापना करना है जो कानूनी और चिकित्सा शिक्षा को छोड़कर एकल नियामक निकाय होगा, जो कि एक बेहतरीन पहल है।
- मल्टीपल एंट्री और एग्जिट प्रोग्राम– कई बार जरुरत और मजबूरियों में कुछ विद्यार्थियों को बीच में कोर्स छोड़ना पड़ता है या उनकी इच्छा भी होती है। ऐसे विद्यार्थियों के लिए मल्टीपल एंट्री और एग्जिट ऑप्शन होंगे। एक छात्र एक कोर्स पूरा करके स्कोर कमा सकता है और ये एबीसी खाते में जमा हो जाएगा। यदि कोई कॉलेजों को स्विच करने का निर्णय लेता है तो कोई भी इन क्रेडिट को स्थानांतरित कर सकता है। यदि कोई छात्र कभी भी किन्हीं कारणों से बाहर निकलता है, तो ये क्रेडिट बरकरार रहेंगे, जिसका अर्थ है कि वह वर्षों बाद वापस आ सकता है और जहां छात्र को छोड़ दिया था, वहां से उठा सकता है ।
- ऐप्स, टीवी चौनलों के माध्यम से वयस्कों को सीखने के लिए तकनीक आधारित विकल्प – यह एक बेहतरीन पहल कही जा सकती है। कुछ वयस्क कुछ पढना या सीखना चाहते हैं, किन्तु कई मजबूरियों में खुद को असक्त महसूस करते हैं। उनके सीखने के लिए गुणवत्ता प्रौद्योगिकी आधारित विकल्प जैसे ऐप्स, ऑनलाइन पाठ्यक्रम मॉड्यूल, उपग्रह आधारित टीवी चौनल, ऑनलाइन पुस्तकें, और आईसीटी से सुसज्जित पुस्तकालय और प्रौढ़ शिक्षा केंद्र आदि विकसित किए जाएंगे।
- क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध होने वाले ई–कोर्सेज– प्रौद्योगिकी शिक्षा योजना, शिक्षण, सीखने–सिखाने, मूल्यांकन, गुणवत्ता आश्वासन के साथ–साथ शिक्षक और छात्रों को प्रशिक्षित किया जायेगा। हिंदी और अंग्रेजी में उपलब्ध ई–पाठ्यक्रमों को अब कन्नड़, ओड़िया, बंगाली जैसी आठ भाषाओं में उपलब्ध कराया जायेगा, जो कि बेहद सराहनीय पहल है।
- विदेशी विश्वविद्यालय भारत में परिसर स्थापित करेंगे–दुनिया के शीर्ष 100 विदेशी विश्वविद्यालयों को नए कानून के जरिए भारत में संचालित करने की अनुमति मिलेगी। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के

दस्तावेज के अनुसार, ''ऐसे (विदेशी) विश्वविद्यालयों को भारत के अन्य स्वायत्त संस्थानों के बराबर नियामक, शासन और सामग्री मानदंडों के संबंध में विशेष छूट भी दी जाएगी। इससे छात्रों को अपने ही देश में शिक्षा की वैश्विक गुणवत्ता का अनुभव करने में मदद मिलेगी। बहु–अनुशासनात्मक संस्थानों को शुरू करने की नीति से कला, मानविकी जैसे हर क्षेत्र पर नए सिरे से ध्यान केंद्रित किया जा सकेगा और शिक्षा के इस रूप से छात्रों को समग्र रूप से सीखने और बढ़ने में मदद मिलेगी । इस प्रकार, छात्रों को मजबूत ज्ञान के आधार से सुसज्जित किया जाएगा ।

- सभी कॉलेजों के लिए कॉमन प्रवेश परीक्षा होगी– सभी उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए कॉमन एंट्रेंस एग्जाम नेशनल टेस्टिंग एजेंसी (एनटीए) आयोजित किया जाएगा। एकल कॉमन प्रवेश परीक्षा की शुरुआत एक और सकारात्मक कदम है जो कई प्रतियोगी परीक्षाओं के तनाव को कम करेगा और उनमें से कई के लिए तैयारी के दबाव को कम करेगा। यह आगे जाने वाले सभी छात्र आवेदकों के लिए एक समान अवसर भी सुनिश्चित करेगा ।

कुछ महत्वपूर्ण और आगामी कदम–

नयी शिक्षा नीति, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नामांकन अनुपात बढ़ाना चाहती है, जो वर्तमान में लगभग 26% है। भारत की स्थिति इस क्षेत्र में चीन, ब्राजील और उत्तरी अमेरिकी राष्ट्रों की तुलना में काफी कम है। इसे बढ़ाने के लिए भारत सरकार को शैक्षिक बुनियादी ढांचे के विकास के लिए मजबूत नीतियां लागू करने की जरूरत है। इस क्षेत्र के लिए पूंजी को बढ़ाना, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) को बढ़ावा देना और बाहरी वाणिज्यिक उधारी (ईसीबी) मार्ग खोलना एक जरुरी कदम होगा। हालांकि वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने 2021–22 के बजट भाषण में कहा था कि देश को प्रतिभाशाली शिक्षकों को आकर्षित करने, बेहतर संरचनाओं के निर्माण करने के लिए बजट की जरुरत पड़ेगी और यह ईसीबी और एफडीआई की सोर्सिंग से संभव हो सकता है।

निष्कर्ष :

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति वर्तमान समय में आकर्षक तो लग रही है किन्तु इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि इसे कितना और किस रूप में समय सीमा के साथ क्रियान्वित किया गया है। हमें अपने सोच के ढर्रे को बदलना होगा और अपनी सहभागिता भी देनी होगी, तभी हम नयी शिक्षा नीति के साथ बदलता और बढ़ता भारत की संकल्पना को साकार होता हुआ देख पाएंगे।

❒ **सहायक प्राध्यापक**, अस्थायी
पत्रकारिता एवं जनसंचार

डॉ. गुरु सरन लाल

छत्तीसगढ़ की लोक कलाएं

सूचनाओं के संचार में लोक माध्यमों का बहुत महत्व है। खासतौर पर दूरदराज और ग्रामीण क्षेत्रों में ये माध्यम बहुत प्रभावशाली हैं। सदियों से परंपरागत तरीके से लोक माध्यम समाज में मौजूद हैं। तमाम नये माध्यमों के चलन में आने के बाद भी लोक माध्यमों का महत्व कम नहीं हुआ है। लोक माध्यम लोगों की जीवनशैली में रच–बस गए हैं। इन माध्यमों द्वारा केवल सूचना, शिक्षा और मनोरंजन ही नहीं बल्कि नैतिक मूल्यों, विचारों, संस्कार, परंपरागत रीति–रिवाज इत्यादि का भी संचार होता है। लोक माध्यम वे माध्यम होते है जो ग्राम्य समाज की परम्परा से प्राप्त हुए हैं। ये माध्यम सूचना एवं संदेश के साथ ही मनोरंजन के साधन भी है। हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता, निरक्षरता बुनियादी सुविधाओं की कमी और विभिन्न आधुनिक जनसंचार के साधनों के पहुँच की कमी के कारण लोक माध्यम सदियों से हमारी संस्कृति में रचे बसे हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य में लोक माध्यमों की समृद्ध परंपरा है। छत्तीसगढ़ में पर्याप्त मात्रा में लोक माध्यम उपलब्ध हैं और लोगों को सूचना, शिक्षा, मनोरंजन के साथ–साथ लोगों को जागरूक करने, प्रोत्साहित–प्रेरित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन माध्यमों की अन्तर्वस्तु स्थानीय भाषा में होती है और लोगों की रूचि व आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार किये जाते हैं।

छत्तीसगढ़ के प्रमुख लोक माध्यम–

नाचा– यह छत्तीसगढ़ का प्रमुख लोकनाट्य है। इसे गम्मत नाम से भी जाना जाता है। इसमे नाटक और नृत्य दोनों का समावेश होता है। सामान्यतः इसके माध्यम से खेल–खेल में तथा हसीं–मजाक के साथ विभिन्न प्रकार के सामाजिक बुराईयों को समाने लाया जाता है। अंधविश्वास और कुरीतियों को खत्म करने का प्रयास किया जाता है।

छत्तीसगढ़ की लोकगीत–

छत्तीसगढ़ के कई लोकगीत हैं जो अनेक अवसरों पर गाये जाते हैं। क्षेत्रीय गीतों में सुआ गीत जो दीपावली पर **'सुआ'** के लिए गाया जाने वाला रस प्रधान गीत है। यह विशेष रुप से गोंड स्त्रियां गाती हैं। कार्तिक माह की शुक्ल एकादशी को प्रारम्भ होने वाले 10 दिवसीय उत्सव में राउत गीत गाया जाता है। माघ माह में पूर्णिमा के दिन छेर–छेरा पुन्नी नामक त्योहार पर छेरा–छेरी गीत गाया जाता है। विभिन्न आधारों पर लोकगीतों को विभाजित कर सकते हैं– संस्कार संबंधी गीत –सोहर जन्म संस्कार से संबंधित है। बरुआ गीत उपनयन संस्कार के समय गाया जाता है। इसमें बरुआ अपने संबंधियों से भिक्षा मांगता है। विवाह के अवसर पर बिहाव गीत गाया जाता है और संस्कार प्रधान सर्वप्रमुख गीत पठौनी है।

ऋतुओं से संबंधित लोकगीत–फाग गीत जो बंसत ऋतु में विशेष कर होली के आसपास गाया जाता है। बारहमासी गीत जेठ माह से प्रारम्भ इस गीत में ऋतुओं की महिमा का बखान किया जाता है। सवनाही, वर्षा ऋतु का प्रमुख गीत है।

धर्म उपासना संबंधी गीत–जॉवरा, गौरा, माता सेवा गीत, भोजली (कजली), कार्तिक स्नान, पंडवानी गीत, गम्मत गीत, ढ़ोलकी, नगमत गीत आदि धर्म उपासना से संबंधी गीत हैं। इसमें सबसे प्रसिद्ध है, पंडवानी गीत जो महाभारत में वर्णित वीरतापूर्ण कार्यों का ओजस्वी शैली में गाया जाने वाले नाट्य प्रधान गीत है। गायक तम्बुरा लेकर गाता है और अभिनय करता है, जबकि साथीगण अन्य वाद्य यंत्रों के साथ हुंकार भरते हैं।

मनोरंजन प्रधान गीतों में ददरिया गीत सौंदर्य और श्रृंगार प्रधान होता है, जिसे छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का राजा कहा जाता है। ढ़ोला मारु गीत मूलतः राजस्थानी प्रेमगीत है जो यहां भी गाया जाता है। नचौनी एक विरह गीत है जिसमें प्रणय संयोग एवं वियोग दोनों ही अवस्था में नारी की विरह वेदना गायी जाती है। विभिन्न लोक कथाओं पर आधारित बांस गीत को बांस के वाद्य यंत्र को बजाकर गाते हैं। देवार गीत लोक कथा पर आधारित है और देवार जाति के लोग नाचते हुए गाते हैं। मां द्वारा शिशु को सुलाने हेतु लोरी गाई जाती है। माता–पिता शिक्षा गीत के द्वारा बच्चों को कुछ शिक्षा देते हैं। खेलगीत को बच्चे खेलते समय गाते हैं।

अन्य गीतों में करमा गीत जिसमें आदिवासी महिला–पुरुष का सामूहिक गीत है, जिसमें कर्म और श्रृंगार का अद्‌भूत संगम है। लोरिक चन्देनी गीत ग्रामीण क्षेत्रों में गाया जाता है। बैना गीत देवी–देवताओं को प्रसन्न रखने हेतु तन्त्र–मंत्र प्रधान गीत है। संध्या गीत कुंवारी कन्याओं द्वारा दीवार पर मिट्‌टी की संध्या देवी बनाकर सामूहिक रुप से गाया जाता है। डन्डा गीत पौष पूर्णिमा को गाया जाने वाला नृत्य गीत है। मांझी गीत छत्तीसगढ़ के जषपुर पहाड़ी के आदिवासियों का यह नृत्यगीत भारत महोत्सव (रुस) में प्रदर्शित हो चुका है। पंथी नृत्य सतनामी सम्प्रदाय का नृत्य प्रधान आध्यात्मिक गीत है। ककसार पाटा गीत भूरिया आदिवासी 'लिंगादेव' को प्रसन्न करने के लिए गाते हैं।

प्रमुख लोकगीत गायकों में पंडवानी के झाडूराम देवांगन, पुनाराम निषाद, तीजन बाई,. ऋतु वर्मा, प्रभा यादव, रेखा यादव, रेवाराम गंजीर, शांतिबाई चेलक, लक्ष्मीबाई बंजारे, बृजलाल पारधी तथा भरथरी गायकों में सूरजबाई खाण्डे, रेखा जलक्षत्री प्रसिद्ध हैं।

छत्तीसगढ़ के कई लोक नृत्य हैं जिनमें प्रमुख हैं–

गौर नृत्य–मुड़िया जनजाति (बस्तर) से सम्बन्धित इस नृत्य को खुशी के अवसर पर विशेषकर नयी फसल के समय किया जाता है।

करमा–आदिवासी स्त्री–पुरुष का यह सामूहिक नृत्य कर्म देवता को खुश करने के लिए किया जाता है। यह काफी विस्तृत रुप से किया जाता है।

ददरिया या दहरिया–यह प्रणय नृत्य है। एक गांव के युवक नृत्य करते हुए दूसरे गांव जाते हैं, जहां युवतियां इनका स्वागत करती हैं। इस दौरान युवक अपनी पसंद का जीवन साथी चुन लेते हैं।

गेंडी नृत्य– मुड़िया जनजाति (बस्तर) युवक लकड़ी की

ऊंची गेंडी (लकड़ी की बनी) पर चढ़कर तेज गति से नृत्य करते हैं। इसमें शारीरिक कौशल और संतुलन महत्व रखता है। मांडरी नृत्य–घोटुल समाज में मुड़िया समाज युवक और युवतियों द्वारा पृथक–पृथक गीत रहित नृत्य किया जाता है। एक व्यक्ति संचालन करता है। राउत नृत्य–अंचल का महत्वपूर्ण लोकनृत्य है जिसमें अहीर जाति के लोग बड़े उत्साह से भाग लेते हैं। यह देवउठनी एकादशी के पश्चात आयोजित होते हैं। पंथी नृत्य–सतनामी समाज का नृत्य है। माघ–पूर्णिमा को जैतखम्भ की स्थापना कर उसके चारों ओर यह नृत्य किया जाता है, जिसमें गुरु घासीदास की चरित्र गाथा को राग से गाया जाता है।

इनके अलावा हुलकी पाटा नृत्य, ककसार, परधौनी, सरहुल, घसिया बाजा, कनाडा नृत्य और चंदैनी नृत्य भी खूब प्रचलित हैं।

छत्तीसगढ़ की लोक कथा–

छत्तीसगढ़ में चुटकी–मुटकी, कौआ और गौरेया, बावत के माया, बाघिन और छेरिया, चिरई और झर, हाथी और गीदड़, बकरी और शेर, राजा के लाल, सीता–बसंत आदि विभिन्न सामाजिक, मनोरंजनात्मक लोक कथाएं प्रचलित हैं।

छत्तीसगढ़ की लोकगाथा–

पंडवानी, भरथरी, ढ़ोलामारु, चन्दनी, राजा वीरसिंह की गाथा, सरवन कुमार की गाथा, सीता बसंत, घनकुल, जुगार, जसमा, दसमत अनेक लोक गाथाएं यहां प्रचलित हैं। आल्हा उदल विश्व की सबसे लम्बी लोकगाथा है।

छत्तीसगढ़ की लोक चित्रकला–

छत्तीसगढ़ के सबसे प्राचीन लोक कला चिन्ह प्रागैतिहासिक काल की गुफाओं में मिले हैं और ये चित्र आज की समग्र चित्र परम्परा से काफी मिलते–जुलते हैं। हरियाली अमवस्या को दीवारों पर गोबर से सवनाही का अंकन किया जाता है। इसमें मानव और पशुओं का आकृति उकेरी जाती है। कृष्ण जन्माष्टमी पर मिट्टी के रंगों से दीवार पर आठे कन्हैया नामक कथात्मक चित्र उकेरा जाता है। हरतालिका के दिन हरतालिका का चित्र बनाया जाता है जो शिव–पार्वती की चित्रात्मक पूजा है। छत्तीसगढ़ की महिलाओं को गुदना प्रिय है। जनजातियों में गुदना प्रथा आज भी विशेष महत्व रखती है। नया घर बनाते समय नोहडोरा डालना के अन्तर्गत दीवारों पर गहरे अलंकरण उकेरे जाते हैं। विवाह आदि अवसरों पर यहां के लोग विभिन्न चित्र बनाते हैं।

निष्कर्ष :

वर्तमान समय में आधुनिक संचार साधनों के होते हुए भी लोक माध्यमों का वजूद कायम है। बल्कि नई प्रतिभाओं के लोक माध्यमों से जुड़ने से ये माध्यम और भी प्रभावशाली हो गये हैं। लोक माध्यमों के प्रभाव को बखूबी समझते हुए सरकारी योजनाओं के प्रचार प्रसार के लिए इसका सहारा लिया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में पल्स पोलियो अभियान, एड्स के प्रति जागरूकता, सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान, राष्ट्रीय स्वास्थ्य साक्षरता मिशन, महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, सूचना का अधिकार, मतदान आदि के प्रति जागरूकता लिए बड़े पैमाने पर सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा लोक माध्यमों का उपयोग किया जाता है।

❐ **सहायक प्राध्यापक, अस्थायी**
पत्रकारिता एवं जनसंचार

संदर्भ–सूची :

1. परमार, श्याम, 1975, ट्रेडिशनल फोक मीडिया इन इंडिया, नई दिल्ली,
2. माहेश्वरी, मुकेश, छत्तीसगढ़ः एक परिचय, 2017, टाटा मैकग्रा हिल एजुकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृष्ठ 155, आईएसबीएन : 9780070705296

डॉ. राजेश मिश्र

माधवराव सप्रे और उनके अनुवाद

लगभग सभी देशों में स्वतंत्रता को लालायित देश की पराधीन लोक–चेतना, साहित्य को उर्वर, उन्नत और समृद्ध बनाती रही है। हिन्दी भाषा और साहित्य भी सामाजिक आंदोलनों के ऐसी ही सींची भूमि से अपना पोषण करते रहे हैं। पराधीन जनमानस अपनी रचनाशीलता में इस दंश को व्यक्त करते रहा है। लोकजागरण, जनजागरण, आन्दोलन और विरोधों ने समय–समय पर भाषा और साहित्य के स्वरूप को बनाया सँवारा है। हिन्दी सेवियों ने सत्ता, प्रभाव और प्रवाह की आवश्यक अवहेलना से हिन्दी की परिधि और सामर्थ्य को बहुमुखी किया है।

भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, देवकीनंदन खत्री, बालकृष्ण भट्ट जैसे बुद्धिजीवी शब्द–साधकों ने यदि हिन्दी को आकार–प्रकार दिया है, तो बाबूराव विष्णु पराड़कर, लक्ष्मण नारायण गद्रे, अमृतलाल चक्रवर्ती, सिद्धनाथ माधव आगरकर और माधवराव सप्रे जैसे हिंदीतर विद्वान कलमकारों का भी इसमें अमूल्य योगदान रहा है। ऐसे विद्वानों की हिन्दी सेवा, एक ऐसा ऋण है जिसे कभी चुकाया नहीं जा सकता और जिसे उठाए रखने में हम अनादिकाल तक स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते रहेंगे।

सामाजिक साहित्यिक जागरण और हिन्दी की सेवा में अपना पूरा जीवन समर्पित कर देने वाले विद्वान मनीषियों में पं. माधवराव सप्रे का व्यक्तित्व उज्ज्वल और अनुकरणीय है। लेकिन निरंकुश महत्वाकांक्षा, भीरु और बेहाया समाज को ही अपने आस–पास पोषित करती है। विरोध, विद्रोह और संघर्षशील व्यक्ति, ऐसे निरंकुश शासनतंत्र के लिए समस्या ही रहते हैं। एक ऐसा रचनाकार जिससे हिन्दी कहानी अपना आकार बना पाती है। एक ऐसा समाजसेवी जो प्रकाशन की सुविधा के लिए छत्तीसगढ़ को अपना पहला प्रेस प्रदान करता है। एक

ऐसा व्यक्तित्व जो आत्मसम्मान के लिए आठ वर्ष के अज्ञातवास और वैराग्य का प्रायश्चित करता है द्य देश की स्वतंत्रता के लिए कारावास सहता है और जीवन पर्यंत विरोध और संघर्ष के बीच हिन्दी की सेवा करता है, निश्चित ही हिन्दी के विकासमान परंपरा में विशेष स्थान के योग्य होता लेकिन वह शासन के दमनचक्र का शिकार होता है।

एक ऐसा समय जिसमें भारतीय चेतना विरोध,विद्रोह और पराधीनता से मुक्ति के लिए आंदोलित थी, माधवराव सप्रे के लेखन ने सामाजिक आन्दोलन को एक सार्थक और मजबूत स्वरूप प्रदान किया। **'छत्तीसगढ़ मित्र'** पत्रिका का तीन वर्ष हिन्दी पत्रकारिता को आधारभूत संस्कार देता है वे बार–बार महसूस करते रहे कि **"जब तक हिन्दी में तेजस्वी और ओजस्वी साहित्य की रचना नहीं होगी और उसका प्रचार–प्रसार नहीं होगा तब तक जनजागरण नहीं होगा।"** हिन्दी ग्रन्थ प्रकाशन मंडली की स्थापना, हिन्दी ग्रंथमाला का प्रकाशन, महावीर प्रसाद द्विवेदी के ग्रन्थ **"स्वाधीनता"** और **"शिक्षा"** का प्रकाशन, **"स्वदेशी आन्दोलन और बायकाट अर्थात भारत की उन्नति का एकमात्र उपाय"** जैसे लम्बे निबंध की रचना, लोकमान्य तिलक की केसरी के स्वदेशी आन्दोलन की लेखमाला जैसे प्रकाशनों के नैरन्तर्य से सप्रे जी अंग्रेजी हुकूमत के आँखों की किरकिरी बन जाते हैं। यह उनके चेतना की जिजीविषा थी जो सार्थकता को ऊर्जस्वित बनाए रखती है। वे एक संकल्प को जीवन भर निभाते रहे कि **"भारतवर्ष में शिक्षा प्रसार और विद्या की उन्नति के लिए आवश्यक है कि शिक्षा का माध्यम देशी भाषा हो।"**

सामाजिक आन्दोलनों, प्रकाशन, लेखन जैसे अन्यान्य कार्यों के साथ ही उनके व्यक्तित्व का एक अहम् हिस्सा है **'अनुवाद कार्य'**। अन्य भाषाओं के उत्तम ग्रंथों का अनुवाद किसी भी भाषा की श्री वृद्धि के लिए आवश्यक होता है। ज्ञान–विज्ञान के सभी विषयों पर हिन्दी में पुस्तकें हों इसकी आवश्यकता सप्रे जी बहुत पहले ही समझ चुके थे। वे यह जानते थे कि भाषा का सामर्थ्य उसके व्यापक और विशाल शब्द भण्डार तथा साहित्य के वैविध्य से होता है। श्रीधर पाठक की अनूदित काव्य कृति **"एकांतवासी योगी"** की समालोचना करते हुए वे स्वीकार करते हैं कि अनुवाद कर्म बड़ा कठिन है। इसमें कई बातों की ओर ध्यान देना पड़ता है। जिस विषय का उल्था करना है उसका मर्म जाने बिना काम नहीं चल सकता। उन्हों ने अनुवाद की पांच कसौटियों को स्वीकार किया है–

1– जिस भाषा में मूल ग्रन्थ लिखा हो उसका पूरा–पूरा ज्ञान उल्था करने वाले को होना चाहिए।
2– जिस भाषा में उल्था करना है उसका भी ज्ञान कुछ कम नहीं होना चाहिए। क्योंकि किसी–किसी भाषा में ऐसे भाव होते हैं कि पराई भाषा से व्यक्त नहीं हो सकते और हुए भी तो अधूरे रह जाते हैं।
3– जिस विषय का अनुवाद करना है उसका भी अच्छी तरह से ज्ञान होना चाहिए।
4– जिस भाषा का उल्था करना है वह उल्था करने योग्य हो।
5– अनुवाद मूल ग्रंथकार के साथ सहानुभूति रखकर सामान वृत्ति हो जाए। जब ऐसा होगा तभी मूल ग्रन्थ का भाव अनुवाद में पूर्ण रीति से चित्रित हो सकेगा।

अनुवाद की परख के लिए भी वे कुछ कसौटी बनाये हैं–

1– भाषांतर जथातथ्य और मूल ग्रन्थ के अनुरूप बना है कि नहीं।
2– मूल ग्रन्थ के सम्पूर्ण भाव अनुवाद में आया है कि नहीं।
3– स्वतन्त्र रीति से यह ग्रन्थ कैसा बना है, जिन लोगों के लिए यह अनुवाद किया गया है उनको वह कहाँ तक रुचिकर और ग्राह्य है।
4– एक भाषा से दूसरी भाषा में उल्था करने में अनुवाद करने वाले मूल ग्रंथकार के पीछे–पीछे ही चलना पड़ता है। वहां उसके निज की कल्पना का उसको बहुत–सा उपयोग नहीं हो सकता।
5– वह एक काम कर सकता है कि अनुवाद की भाषा सरल, भाव सुबोध और रस मधुर रखकर अपनी योग्यता स्वतन्त्र रूप से भी प्रकट करे।

माधवराव सप्रे जी के अनुवाद कार्यों में श्री समर्थ रामदास स्वामी कृत मराठी ग्रन्थ **"दासबोध"** का अनुवाद इन सभी कसौटियों पर खरा है। सप्रे जी का दूसरा महत्वपूर्ण अनुवाद लोकमान्य तिलक जी की अनुपम कृति **"श्रीमद्भागवतगीता रहस्य"** या **"कर्मयोगशास्त्र"** का है। महात्मा तिलक के गीता रहस्य का यह अनुवाद हिन्दी और किसी भी भाषा में किया गया पहला अनुवाद है। उनका तीसरा अनुवाद कार्य **"महाभारत मीमांसा"** है। यह श्री चिंतामणि विनायक वैद्य के श्रीमनमहाभारत के **"उपसंहार"** नामक मराठी ग्रन्थ का अनुवाद है। इसके अतिरिक्त सप्रे जी द्वारा श्री दत्तात्रेय गोपाल लिमये की मराठी पुस्तक का अनुवाद **"भारतीय युद्ध"** 1970 में, दत्त–भार्गव नामक मराठी ग्रन्थ का अनुवाद **"श्री दत्त भार्गव संवाद"** 1982, एवं श्री हरि गणेश गोडबोले के मराठी ग्रन्थ **"आत्मविद्या"** का अनुवाद कार्य इनके स्वयं के मानदंडों के अनुरूप उचित ठहरा और पाठक वर्ग में उसी प्रकार लोकप्रिय भी रहा। सप्रे जी के अनुवाद अपने समय के मील के पत्थर सिद्ध हुए जो बाद के अनुवाद कर्म को दिशा निर्देशित करते रहे। सप्रे जी ने मातृभाषा दूसरी होने के बाद भी हिन्दी को अपने व्यक्तित्व और कृतित्व का माध्यम बनाया।

माधवराव सप्रे के जीवन संघर्ष, उनकी साहित्य साधना, हिन्दी पत्रकारिता के विकास में उनके योगदान, उनकी राष्ट्रवादी चेतना, समाज सेवा और राजनीतिक सक्रियता हिन्दी साहित्य, पत्रकारिता और अनुवाद के कार्य निश्चित ही आज तक प्रेरक और अनुकरणीय है। कर्मवीर में माखनलाल चतुर्वेदी ने स्वीकार किया है कि **"पिछले पच्चीस वर्षों तक पं. माधवराव सप्रे जी हिन्दी के एक आधार स्तम्भ, साहित्य, समाज और राजनीति की सस्थाओं के सहायक उत्पादक तथा उनमें राष्ट्रीय तेज भरने वाले, प्रदेश के गावों में घूम–घूम कर अपनी कलम को राष्ट्र की जरूरत और विदेशी सत्ता से जकड़े हुए गरीबों का करुण–क्रंदन बना डालने वाले, धर्म में धँस कर, उसे राष्ट्रीय सेवा के लिए विवश करने वाले तथा अपने अस्तित्व को सर्वथा मिटा कर, सर्वथा नगण्य बनाकर, अपने आस–पास के व्यक्तियों और संस्थाओं के महत्त्व को बढ़ाने और चिरंजीवी बनाने वाले थे।"**(11 सितम्बर 1926ई., कर्मवीर) मैनेजर पाण्डेय जी बड़े दु:ख के साथ इस कठोर सच को स्वीकार करते हैं कि **"यह देखकर आश्चर्य होता है कि हिन्दी साहित्य के किसी इतिहास में या हिन्दी आलोचना के किसी इतिहास में सप्रे जी के समालोचना कर्म का कहीं कोई मूल्यांकन नहीं है, बल्कि समालोचक के रूप में उनके नाम तक का उल्लेख नहीं है।"** (माधवराव सप्रे का महत्त्व : मैनेजर पाण्डेय) समालोचक, निबंधकार, कहानीकार, कुशल अनुवादक, या सामाजिक चेतना के उद्घोषक चाहे जिस रूप में भी अब माधवराव सप्रे जी का मूल्यांकन किया जाय, अपने कर्म और धर्म के कारण भावी पीढ़ी के लिए वे मील के पत्थर साबित होंगे।

❒ **सहायक प्राध्यापक**, अस्थायी
हिन्दी

डॉ. शोभा बिसेन

व्यंग्य लेखन और हरिशंकर परसाई

व्यंग्य क्या है ? इसका हास्य से संबंध क्या है ? वह एक स्वतंत्र विधा है या समस्त विधाओं में व्याप्त रहने वाली भावना या रस ? ऐसे तमाम सवाल हैं, जिनका आशय अधिकांशतः पाठकों व समीक्षकों के लिए स्पष्ट नहीं होता। दरअसल हास्य, उपहास, परिहास, वक्रोक्ति एवं व्यंग्य में से अधिकांश वृत्तियों का जन्म सामाजिक एवं नैतिक प्रहरी के रुप में होता है। असंगति, विसंगति, विरुपता, विषमता और वस्तु की हीनता का बोध प्रायः इन वृत्तियों का कारक तत्व होता है। किन्तु कारक तत्वों की समानता रखने वाली ये वृत्तियां अपने परिणाम, पहुंच एवं दृष्टिकोण में अपना भिन्न–भिन्न अस्तित्व रखती है। स्थूल रूप से एक प्रतीत होने वाली इन प्रवृत्तियों में बहुत ही सूक्ष्म अंतर होता है। लेखन में यह सभी प्रवृत्तियां सह–यात्री हो सकती हैं समान नहीं। और इसे वही स्पष्ट कर सकता है जो स्वयं एक अच्छा व्यंग्यकार होने के साथ–साथ कुशल समीक्षक भी हो। कथाकार व आलोचक सुरेशकांत हास्य तथा व्यंग्य में अंतर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि **हास्य झरोखे में बैठे उस दर्शक के समान है जो आने–जाने वालों की बेढंगी करतूतों पर हंसता रहता है, जबकि व्यंग्य उन्हें टोके बिना नहीं रह सकता।** अतः व्यंग्य हास्य का न तो कोई प्रकार है न ही सब प्रकार के व्यंग्य के लिए हास्य अनिवार्य है। व्यंग्य हास्य, उपहास, परिहास से आगे की चीज है। समाज और व्यवस्था में आयी विकृति और गलत मान्यताओं को व्यंग्य उसके निहित निराकरण के प्रयोजन से उसके कटुतम और वास्तविक रूप में सामने रखता है। हरिशंकर परसाई व्यंग्य के विषय में खुद कहा करते थे कि व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है। जीवन की आलोचना करता है। विसंगतियों, अत्याचारों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।

परम्परागत संस्कृत साहित्य में व्यंग्य का प्रयोग काव्य शास्त्र में काव्य–शक्ति की त्रयी (अभिधा, लक्षणा व व्यंजना) में वक्रोक्ति या व्यंग्यार्थ के रूप में मिलता है किन्तु यह सब आंशिक संकेत मात्र के रूप में ही है, यह उस व्यापक परिवेश में ग्रहणीय नहीं है जिस पर व्यंग्य का आधुनिक स्वरूप स्थित है। आधुनिक व्यंग्य लेखन इसकी परिधि के बाहर है, जिसमें संस्कृत की व्यंजना के साथ अंग्रेजी '**सटायर**' का अर्थ एवं उद्देश्य सम्मिलित है। आज का व्यंग्य पारंपरिक चुहल या परिहास मात्र न होकर एक गंभीर एवं साहित्यिक कार्य है जिसमें विरूपता, विकृति के विरुद्ध प्रहारात्मक भाक्ति व वस्तुस्थिति की गहराई होती है। मानविकी परिभाषा कोष में **सटायर** का अर्थ **व्यंग्य** देते हुए कहा गया है कि **उसका लक्ष्य मानवीय दुर्बलताओं पर प्रहार करके उन्हें उभारना और सुधारना होता है।** यानि आधुनिक अर्थों में संस्कृत की **'व्यंजना'** से उत्पन्न होकर भी व्यंग्य उसके उतना निकट नहीं बैठता जितना कि अँग्रेजी के **'सटायर'** के निकट है। अतः **पाश्चात्य** और **पौर्वात्य** मतों के आधार पर स्पष्ट है कि **व्यंग्य का जन्म समाज में चारों ओर व्याप्त विकृतियों, विद्रूपताओं से होता है, जो निरंतर व्यक्ति को कचोटती रहती है। जीवन की समस्त विकृतियों, विरूपताओं और नकारात्मक, निंदनीय व उपहासास्पद अवस्थाओं का कलात्मक निषेध एवं सोद्देश्य खंडन ही व्यंग्य है।** इस प्रकार निषेधात्मक होते हुए भी व्यंग्य का स्वरूप सृजनात्मक होता है। अपने इस स्वरूप के कारण व्यंग्य की सबसे बड़ी उपादेयता उसकी सामाजिक परिष्कार की क्षमता होती है। व्यंग्य की यह कलात्मकता, सोद्दे यता तथा आक्रामकता उसे हास्य, उपहास, वक्रोक्ति आदि समान प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियों से अलग कर देती है।

किसी भी युग की सामाजिक व्यवस्था की विकृतियों के विरुद्ध हुआ सोद्देश व्यंग्य लेखन आधुनिक अर्थों में ग्रहण करने योग्य होता है। चाहे वह मध्यकाल के कबीर का व्यंग्य हो, आधुनिक काल के भारतेन्दु का व्यंग्य लेखन हो या स्वातंत्र्योत्तर काल के हरिशंकर परसाई का, सभी का व्यंग्य लेखन अपने समय में आधुनिक रहा है। लेकिन मध्यकाल व भारतेंदु युग में परिस्थितिजन्य या कहें कि पराधीनतावश प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति हेतु जिन छद्म योजनाओं एवं भ्रामक, सूक्ष्म व जटिल प्रतीकों की सहायता से जिस प्रकार का हास्य मिश्रित व्यंग्य प्रस्तुत हुआ है, उससे इतर स्वतंत्रता के बाद परसाई ने अपने धारदार व मारक क्षमता वाले वैचारिक व्यंग्य लेखन के माध्यम से एक सशक्त आधुनिक विधा के रुप में व्यंग्य को स्थापित किया है। चूंकि स्वतंत्र भारत में व्यंग्यकारों की सर्वोत्तम उपलब्धि देश की जनतांत्रिक प्रणाली रही है, जिसमें अपनी बात अपने ढंग से कहने की पूरी आजादी उनके पास है। आज वे कटु से कटु सत्य को उग्रतम शब्दावली एवं तिक्त वाक्यों के माध्यम से अभिव्यक्त करने को स्वतंत्र है।

हरिशंकर परसाई एक विचार संपन्न, प्रबुद्ध एवं सशक्त व्यंग्यकार रहे हैं। हमारा देश स्वतंत्रता के बाद जब अपने ही नेताओं व कर्ता–धर्ताओं द्वारा कई विसंगतियों व विरूपताओं से आबद्ध हो रहा था उस समय परसाई के अंदर एक चेतना सम्पन्न व्यंग्यकर का जन्म होता है। वे सामाजिक यथार्थ व आम–आदमी की पक्षधरता से निर्मित वैचारिक दृष्टि की बदौलत अकेले दम पर व्यंग्य को साहित्य में प्रतिष्ठित करते हैं और अपने ही शब्दों में उसे **'शूद्र से क्षत्रिय'** बनाते हैं न कि ब्राम्हण। परसाई के अनुसार **व्यंग्य, साहित्य में ब्राम्हण बनना भी नहीं चाहता क्योंकि वह कीर्तन करता है।** अर्थात इस बात से ही उनका मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है कि वे व्यंग्य को शास्त्रीय ज्ञान की परिधि से इतर व्यावहारिक ज्ञान के धरातल पर आम आदमी के संघर्ष से जोड़ते हैं। परसाई जी का यह कथन उन्हें कबीर की परंपरा से भी जोड़ता है। अर्थात **'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखन की देखी'** में वे विश्वास करते हैं। उनके अनुसार **मध्ययुग के कवियों में कबीर के सिवा किसी में युगीन सामाजिक चेतना नहीं थी।... कबीर ने जीवन को आर–पार देखा था। समाज व व्यवस्था के पाखंड और अंतर्विरोधों को समझा था और तिलमिला देने वाली चोट की थी।** यही तिलमिला देने वाली चोट हरिशंकर परसाई अपनी युगीन सामाजिक,

राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं वैयक्तिक परिस्थितियों में आई विद्रूपताओं व विकृतियो पर भी करते हैं। उन्होंने कबीर की अक्खड़ता को आत्मसात किया थाा। उन्होनें **सुनो भाई साधो, कबीरा खड़ा बाजार में, माटी कहे कुम्हार से** जैसे कॉलमों को लिखकर कबीर की विरासत को आगे बढ़ाया।

एक सशक्त रचनाकार (व्यंग्यकार) के रूप में हरिशंकर परसाई ने कबीर के साथ–साथ मुक्तिबोध की रचनाधर्मिता को भी आत्मसात किया था। उन्हें वर्ग–शत्रुता की भी बेहद बारीक पहचान थी। वे बेहद सजग रहते थे। यह सजगता उन्हें मुक्तिबोध से मिली थी। उन्हीं से मार्क्सवादी विचारधारा और वर्ग–दृष्टि प्राप्त की थी। वे समाज की रचना और उसके विकास–क्रम को कार्ल–मार्क्स की वैज्ञानिक दृष्टि से देखते थे। उनका विश्वास था कि **समाज में मानवीय सम्बन्धों का न्यायपूर्ण हल मार्क्सवाद ने ही दिया है।** परसाई मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध थे। उनके विचार के केन्द्र में मनुष्य, उसका समाज और समाज की स्वस्थ सम्भावनाएं थी, इसलिए उन्हें आच्छादित करने वाले कुहेलिकाओं (पूंजीवादियो, भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, समाज के शोषकों) की सफाई के लिए अपने व्यंग्य के माध्यम से तिक्त व मर्मभेदी वाणी का प्रयोग करते थे। परसाई मार्क्सवादी विचारधारा से प्रतिबद्ध लेखन के बावजूद पार्टी–लेखक माने जाने के विरोधी थे। प्रतिबद्धता को वे कहीं गहरी चीज समझते थे, जो **सामाजिक द्वन्द में शोषितों की ओर खड़े होने, उनकी ओर से लड़ने, उनकी पीड़ा को स्वर देने से ताल्लुक रखती थी।** छद्म प्रतिबद्धता का उन्होंने हमेशा विरोध किया। वे कहते हैं कि **इस देश में जो जिसके लिए प्रतिबद्ध है, वही उसे नष्ट कर रहा है। लेखकीय स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध लोग ही लेखक की स्वतंत्रता छीन रहे हैं।... समाजवाद को समाजवादी ही रोके हुए हैं।** परसाई ने पूंजीवादी समाज और संस्कृति के विघटनकारी तत्वों का विश्लेषण करते हुए समाजवादी जीवन–मूल्यों की पक्षधरता को स्पष्ट किया है। वह राजनीति को जीवन की निर्णायक शक्ति मानते थे, जो आधुनिक युग में मनुष्य और समाज की नियति को निर्धारित करती है, यही कारण रहा कि राजनीति उनके व्यंग्य लेखन का केन्द्रीय तत्व रही। परसाई के ही शब्दों में **राजनीति को नकारना भी एक राजनीति है।** उनकी तीक्ष्ण दृष्टि राजनीतिक छल–छद्म को भी उघाड़ के रख देती है। संक्षेप में कहे तो उनके व्यंग्य हमें समाज, हमारे रिश्ते–नाते, हमारी व्यवस्था, राजनीतिक चिन्तन की पतनशील और अर्थहीन दशा को अत्यंत सरल–सरस एवं अर्थ–गम्भीर वाक्यों के माध्यम से अवगत कराते हैं। वे अपने तमाम संघर्षों एवं प्रयासों से समाज में तार्किक चेतना का निर्माण कर आम आदमी को जीवनगत ढोंग–ढकोसलों व बंधनों को तोड़ फेंकने के लिए उठ खड़े होने की प्रेरणा और साहस देते हैं। निष्कर्षतः आधुनिक हिंदी व्यंग्य लेखन की एक नई वैचारिकता के साथ शुरुआत कर एक विधा के रूप में प्रतिष्ठित एवं प्रतिस्थापित करने एवं आम पाठक तक उसकी पहुंच बनाने, उन्हें जागृत करने में हरिशंकर परसाई का महत्वपूर्ण योगदान है। इस संदर्भ में यशपाल ने कहा है कि **'तुम्हारी लेखनी महान है, जिसे पढ़कर लोग तिलमिला जाते हैं और लाठी उठा लेते हैं।'**

❐ **सहायक प्राध्यापक**, अस्थायी
हिन्दी

प्रो. हरीश कुमार

कविता

दरख्त

थी धूप कड़ाके की गर्मी का बख्त था।
दूर तक निगाह में न कोई दरख्त था।
शरीर हो चुका था पसीना–पसीना,
लगता था कि मुष्किल हो जायेगा जीना।
अचानक कुछ दूर एक पेड़ नजर आया,
खिल उठा एकदम चेहरा मेरा मुरझाया।
यूं लगा कि मिल गई फिर से जिन्दगी,
करने लगा मैं उस मालिक की बन्दगी।
मैं ज्यों ही उस पेड़ के जरा करीब आया,
दे दी उस दानी ने मुझे अपनी सब छाया।

मैंने दरख्त से कहा :

ये कड़ाके की गर्मी हर तरफ वीरानी का आलम,
न कोई साथी है न संगी है न कोई जानम।
ये जीवन है कोई या कोई सजा है,
तन्हाई ही तन्हाई है न कोई मजा है।
सुनके मेरी बात वो हिलने सा लग गया,
झुक के मेरे गले से मिलने सा लग गया।

कहने लगा :

इस जिन्दगी का मतलब जाना है आपने,
क्या अपने किसी को अपना माना है आपने।
जिसको भी देखिये वो अपने आप में है खोया,
दुनिया जाये भाड़ में वो मजे से है सोया।
जो जला के अपने घर को दे औरों को रोषनी,
न पाओगे इस दुनिया में तुम ऐसा आदमी।
गर रूलाया किसी को किसी ने तो खुद भी है रोया,
काटा है उसने वही जो जिसने है बोया।
इस दौर में इन्सानियत की तुम बात न को,
जो बात ही बेकार है वो बात न करो।
है कुछ इस तरह से मेरी भी कहानी,
कहो तो सुना दूँ अपनी ही जुबानी।
रिश्ता मेरा इंसान से है बहुत पुराना,
देखा है हमने साथ–साथ दौरे जमाना।
पैदा हुआ आदमी तो पालने में झुलाया,
गया स्कूल तो पढ़ने में भी साथ निभाया।
आया जो बुढ़ापा तो दिया मैंने सहारा,
कोई नहीं आया चाहे जिसको पुकारा।
क्या करता जो मरते वक्त मैं काम न आता,
भटकती रहती आत्मा जो मैं मुक्ति न दिलाता।
तमाम जिंदगी की मैंने तेरी सेवा,
न सोचा कभी कि मिलेगी मुझे कोई मेवा।
फिर भी आदमी ने मुझे अपना नहीं माना,
मेरा त्याग मेरा दुख मेरा दर्द नहीं जाना।
कितनी बेरहमी से वो मुझे काट रहा है,
कितने हिस्सों में देखो मुझे बांट रहा है।
मानो कि ये कुल्हाड़ियां उसके तन पे गर चलें,
कैसे उसका परिवार उसके बच्चे फिर पलें।
गर सीख सके मुझसे तो कुछ सीख ले,
खुद पे कर भरोसा न किसी से भीख ले।
मैं कुछ नहीं मांगता किसी से भी कभी,
मालिक ने दे दिया है जो मुझे चाहिए सभी।
जो भी तेरी तरह से मेरे पास आयेगा,
इसी तरह से मेरी ठंडी छांव पायेगा।
जीवन तुम्हारा भी हो जायेगा सफल,
गर मेरी तरह से अपने खिलाओ औरों को फल।
मरने के बाद भी सब तुम्हें याद करेंगे,
फिर से जहां में आ जाओ ये फरियाद करेंगे।

❐ **आचार्य**
प्रबंध अध्ययन

हिंदी दिवस समारोह

हिंदी दिवस समारोह
14 सितम्बर, 2021
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

हिंदी दिवस समारोह

हिंदी दिवस समारोह

हिंदी दिवस समारोह

हिंदी दिवस समारोह
14 सितम्बर, 2021
राजभाषा प्रकोष्ठ
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

हिंदी दिवस समारोह
14 सितम्बर, 2021
राजभाषा प्रकोष्ठ

मातृभाषा दिवस समारोह
राजभाषा प्रकोष्ठ

मातृभाषा दिवस समारोह
राजभाषा प्रकोष्ठ

हिंदी दिवस समारोह
14 सितम्बर, 2021
राजभाषा प्रकोष्ठ

हिंदी दिवस समारोह
14 सितम्बर, 2021
राजभाषा प्रकोष्ठ

(भारत - नेपाल के संदर्भ में)

डॉ. अनामिका तिवारी

अंतरराष्ट्रीय एकता में हिन्दी भाषा की प्रासंगिकता

किसी भी राष्ट्र में भाषा का संबंध के वहां सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण से है। भाषा ही मानव की विचारों के आदान–प्रदान और अभिमत का माध्यम है। मानव को विकसित करने का मार्ग से शुरू होता है और यह मार्ग मानव को समाज तक पहुंचाता है। जिस प्रकार भाषा दो मानवों को एक दूसरे से जोड़ती है ठीक उसी तरह एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से भी जोड़ती है। जिसके फलस्वरूप उनकी अंतरराष्ट्रीय एकता को मजबूती मिलती है।

भारत वर्ष में लगभग पांच हजार वर्षों तक अध्यात्म, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, दर्षन, तर्कशास्त्र, ज्योतिष आदि विषयों की भाषा संस्कृत रही है। भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत बाद के सीमित होने लगी। भारत विविध भाषीय राष्ट्र है संविधान के 8वीं अनुसूची के अनुसार भारत में 22 भाषाओं के राष्ट्रीय भाषा का स्थान मिला है। इस सभी भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा है सभी भाषाओं ने संस्कृत के अनेक शब्दों को अपनाया और कुछ शब्दों का सृजन किये और साथ ही समय के अनुसार देशी, विदेशी शब्दों को भी अपने में आत्मसात कर लिया है भारत के बाईस भाषाओं में से एक भाषा जो कि नेपाली भाषा है। भारतीय संविधान में नेपाली भाषा को एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की गई है।

नेपाल सरकार द्वारा गठित आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला है कि नेपाली भाषा में हिन्दी भाषा से समरसता ज्यादा है। नेपाली और हिन्दी एक लिपि होने के कारण नेपाली भाषा का हिन्दी भाषा के साथ समानता किसी भी अन्य भाषा से अधिक जानी जाती है। जिसके कारण विचारों का परस्पर आदान–प्रदान सहज ढंग से हो पाता जाता है।

जिस राष्ट्र की भाषा सुरक्षित होती उस राष्ट्र की संस्कृति भी सुरक्षित हो जाती है, तब राष्ट्र की संस्कृति सुरक्षित हो तो वहां का साहित्य स्वाभाविक रूप से सुरक्षित हो जाता है। विश्व में हिन्दी जानने वाले की संख्या सर्वाधिक है। भारत के बाहर लगभग 132 देशों में हिंदी भाषी और हिन्दी जानने वालों की काफी बड़ी संख्या है। आज यह बोली विकसित होकर विश्व भाषा के स्तर तक जा पहुंची है। यही कारण है कि वर्तमान समय में पूरे विश्व में हिंदी का आज इतना व्यापक प्रचार प्रसार हो रहा है कि पत्र–पत्रिका समाचार, पत्रों व इलेक्ट्रॉनिक मिडिया की हिन्दी भाषा में प्रचलन बड़ा है।

नेपाल में पुराने शाह वंश काल में नेपाल में दो ही भाषा नेपाली और हिन्दी का मुख्य स्थान रहा है। लेकिन 30–32 वर्षों के कार्यकाल में काफी अस्थिरता रही है। 2007 के प्रजातंत्र के बाद राष्ट्र भाषा पर सहमति नहीं बन पाई नेपाली के सामने किस भाषा को राष्ट्र भाषा का दर्जा दिया जाये इसमें कुछ नकारात्मक विचारधारा वालों की वजह से हमारी भाषा हमारा देश जैसे विषयों की खाई और भी गहरी होती गई। भाषा चाहे किसी भी देश या राष्ट्र का हो वह उस राष्ट्र की मात्र भाषा होता है। जो अपने आप ही व्यावहारिकता में विद्वतजनों की भाषा में उपदेशों में मात्र भाषा का महत्व केवल व्यावहारिकता में नहीं, केवल उपदेशात्मक होता है।

भारत के कुछ पुर्वोत्तर राज्यों में नेपाली भाषा मातृभाषा के रूप में बोले और लिखी जाते है। भारत एवं नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्रों में दोनों भाषा बोली जाती है। जो इनके बीच की अंतरराष्ट्रीय एकता को प्रकट करती है। विभिन्न राष्ट्र एक दूसरे की भाषा को इसलिए स्वीकार करते है, क्योंकि इसमें एक–दूसरे के साथ संबंध विकसित करने में मद्द मिलती है। भाषा चाहे किसी भी देश व राष्ट्र की हो, उस राष्ट्र की मातृभाषा अपने आप में पूर्ण होती है। भारत और नेपाल के बीच सांस्कृतिक, राजनैतिक की डोर सुदृढ़ है, उसे भाषा और भी मजबूती प्रदान कर सकेगी। भाषा का आदान–प्रदान दोनों राष्ट्र की तरफ से होता था और आज भी वर्तमान परिदृश्य में है, लेकिन उसके रूप में बदलाव हो चुका है।

अतः निस्वार्थ भाव से इन भाषाओं की सेवा करने में ही दोनों राष्ट्रों की अंतरराष्ट्रीय एकता को मजबूती मिल सकती है। इनका इतिहास बहुत समृद्ध रहा है, जिसे सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य है। भारतीय भाषाओं की प्रासंगिकता के साथ–साथ राष्ट्रीय एकता में भाषा योगदान प्रदान कर सकती है।

❐ **सहायक प्रध्यापक**
वाणिज्य

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय के आदर्श मूल्य

1. अकादमिक सत्यनिष्ठा और मानवीय गरिमा के अनुरुप चरित्र, क्षमता और सृजनात्मकता का विकास।
2. स्थानिक, पारम्परिक और जनजातीय मूल्यों पर विशेष ध्यान देते हुए ज्ञान और नवोन्मेष के माध्यम से बुद्धिमता और श्रेष्ठता का विकास।
3. उद्यमिता एवं नवोन्मेष की भावना का संचरण।
4. वैज्ञानिक लोकाचार एवं लोकतांतिक मूल्यों का अन्तर्निवेषण।
5. सहिष्णुता, सत्य, क्षमाशीलता और ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' जैसे मूल्यों का संवर्धन।
6. सांस्कृतिक एवं सामाजिक विविधता के प्रति सम्मान का अन्तर्निवेषण।
7. विचार एवं चिन्तन की अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन।
8. शिक्षार्थी केन्द्रित अकादमिक वातावरण विकसित करना और सुगमता, समानता एवं समावेशन का संवर्धन।
9. शिक्षार्थियों में राष्ट्रीय मूल्यों एवं अखण्डता का अन्तः संचरण।
10. राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शैक्षणिक प्रयासों का संवर्धन।

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

केन्द्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम 2009 के अंतर्गत स्थापित

बिलासपुर, (छत्तीसगढ़) भारत